श्रीः ।

श्रीहरिः ।

मूर्तिपूजा ।



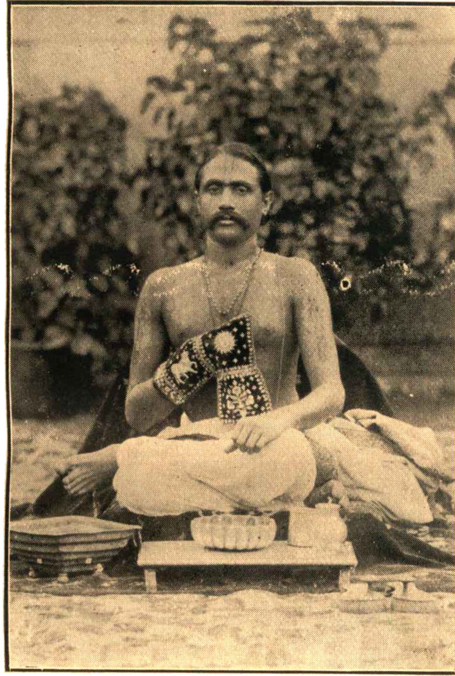
सुदामापुरीस्थ गोस्वामि वल्लभात्मज श्री
जीवनाचार्यजीकी आज्ञानुसार, सर्व सनात-
नधर्मावलम्बियोंके विनोदार्थ तथा
भ्रान्तपुरुषोंके भ्रमनिवारणार्थ,

खेमराज श्रीकृष्णदासके
बम्बई
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेसमें मुद्रित.



कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना ।
विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाशयः ॥

संवत् १९६७, शके १८३२.



सुदामापुरीस्थ गोस्वामि श्रीवल्लभात्मज
श्री जीवनाचार्यजी महाराज.

श्रीहरिः ।

प्रस्तावना ।



सर्व सनातन धर्मियोंको विदित हो कि, आजकल कराल कलिकालके प्रभावसे तथा अन्य धर्मियोंके शिक्षणके प्रभावसे इस सनातनधर्मके अनेक विषयोंपर नवशिक्षित पण्डितंमन्य अनेकप्रकारकी शंकारूपी कुठारका प्रहार करते हैं और उस प्रहारसे अल्पज्ञ अनेक सनातनधर्मियोंके चित्त भ्रांत होते जातेहैं,समयकी ईदृश अवस्थाको देख जब कि, सम्वत् १९५० की सालमें गोस्वामि श्रीजीवनाचार्यजी महाराज सिंध पंजाबकी यात्राको गये थे तब यद्यपि महाराज श्री आप स्वयं विद्वान् होनेसे सर्वत्र सनातनधर्मोंके विषयोंपर व्याख्यान दे देकर प्रतिवादियोंको निरुत्तर करते रहे तथापि अपना सहायक तादृश सनातनधर्माग्रही प्रखर वक्ता एक अपने साथ होना चहिये ऐसी इच्छा जिस समय श्रीमहाराजकी हुई उसी समयपर साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यासका समागम होगया और वे पण्डितजी भी सनातनधर्मके पूर्ण आग्रही होनेसे किसी

प्रतिष्ठित धर्माग्रही उत्साही संप्रदायाचार्यके आश्रयकी अपेक्षा रखते थे, ऐसे समयपर दोनों महात्माओंका मिलाप मानों सनातनधर्मके पुनरुद्धारार्थ ही था ।

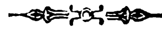
उस समय सिंध, पंजाब, अमृतसर, लाहौर, कलकत्ता, मारवाड, मालवा, आदि स्थानोंमें हजारों श्रोताओंके समक्ष सनातनधर्मके विरोधियोंके प्रत्येक विषयोंपर बड़े जोरशोरसे व्याख्यान होनेलगे उन व्याख्यानोंमेंसे 'मूर्तिपूजा' 'अवतारमीमांसा' और 'दयानन्दमतमूलोच्छेद' नामक जिसमें ब्राह्मण भागका भी वेदत्व सिद्ध कियागया है यह तीन व्याख्यान पुस्तकाकार छपवाके प्रकट कियेगये थे उनमेंसे "मूर्तिपूजा" की पुस्तकोंके वितरणमें उठ जानेसे यह द्वितीयावृत्ति महाराज श्रीकी आज्ञासे मुद्रित हुई है । और श्राद्धमीमांसा, पुराणविरोधपरिहार, तथा तीर्थसमर्थन, इन तीन विषयोंके व्याख्यानोंका सार भी पुस्तकाकार अल्प समयमेंही छपके तैयार होजावेगा ।

छगनलाल अमरजी शास्त्री.

पोरबन्दर.

श्रीगणेशाय नमः।

सूचनिका।



सूचनिका।

इति।

॥ श्रीहरिः ॥

॥ श्रीकृष्णाय नमः ॥



सुदामापुरीस्थगोस्वामिश्रीवल्लभात्मजश्रीजीवना-
चार्यजी महाराजकी अध्यक्षतासें

मूर्तिपूजा ।

के

विषय पर

(पण्डित अम्बिकादत्त व्यास साहित्याचार्यकी वह वक्तृता जो सिंध, पजाब, अमृतसर, लाहौर, कलकत्ता, मारवाड, मालवा आदि स्थानोंमें हजारों श्रोताओंकी भीड़से भई है और जिससे सैकड़ों विपक्षी अपने दुराग्रहको छोड़ पुनः सनातनधर्मावलम्बी हो गये हैं) ।

अकस्मात् यह एक ऐसा ही शतक आगया है कि इन दिनों मूर्त्तिपूजा पर लोगों को बड़े बड़े शङ्का समाधान होने लगे हैं किसी ओर से कोई बाबू साहब आके मूर्त्तिपूजा पर अपना उफान निकाल जाते हैं और किसी ओरसे कोई संन्यासी बाबा आकर मूर्त्तिपूजा पर अपना तुम्बा फटकार जाते हैं । और

इधर नौसिखुए अंगरेजिहा लोगोंकी ओर देखिये तो उन लोगोंकी पढ़ने पढ़ानेकी परिपाटी ऐसी नष्ट भ्रष्ट हो रही है कि सनातनधर्मकी श्रद्धा उन लोगोंके हृदयसे स्वयं उड़ी ही जाती है। और ऐसा क्यों न हो ? जब हमारे बाबू लोग लड़केको बचपनहीसे नमस्कार प्रणामके ठिकाने गुडमार्निङ्ग सिखलाने लगे और कुछ बड़ा होतेही स्कूलमें लेजा मास्टरोंके हाथ कृष्णार्पण करने लगे तो क्या हो ? जिस लडकेको कुरतेमें घुण्डी लगाना तक नहीं आता और पाखानेसे आ हाथ धोना तक नहीं आता उस लडकेके विशुद्ध दुग्धके फेन ऐसे कोमल हृदयमें यूरोप और अमेरिकाके भावोंकी खेती की जाती है। घरसे चटनी और घुंघुना चाटते हुए स्कूलमें पहुँचे कि देखा देखी पेन्सिल् चाटना तो पहला लेसन् सीखा अब चाहै हिन्दूका लड़का मुसल्मानके लडकेसे पेन्सिल् ले और चाहै श्रोत्रिय ब्राह्मणका लड़का धोबीके बच्चेसे ले. पेन्सिल् चाटनेके समय कुछ सोचें विचारें सो क्यों ? अब यस्सर नोसरका सर्राटा लेते सरसराकर ऊंचेसे ऊँचे दर्जे तक पहुँच गये पर अपने अपने धर्मका कुछ भी मर्म न समझे। हां यह उन्नति अवश्य भई कि पहले लिफाफाबन्ध करनेको गोन्ददानी या पानी ढूढना

पड़ता था सो अब तो चट होठपर फेर थूक लगाया और बन्धकिया, विद्याके बलसे नौकरको पुकारने और पानी मांगनेका टण्टा जाता रहा और पहले हाथकी अंगुलियां कुछ करीं थीं पर अब तो ऐसी कोमल और चिकनी होगई कि किताबके पन्ने उलटनेका कोटि कोटि यत्न करते हैं पर अंगुली पारेसी फिसली जाती है फिर क्या करैं विचारोंको हारके थूक और कफके लवाबके बलसे पन्ने उलटने पड़े। देखिये तो भगवानने इस शरीरहीमें पानी और गोंदके प्याले सजा रखे हैं पर वे प्राचीन ढङ्गके छोटी बुद्धिवालोंको नहीं दीखते पर विशाल बुद्धि सम्पन्न इन अंगरेजी भाषाके विद्वानोंसे इनका ब्यवहार क्यों बचा रहै ? अब कहिये तो, इस दलने पहले तो संस्कृत भाषा पढ़ी ही नहीं और पढी भी तो इतनीही पढ़ी कि विसर्ग लिखना तक न आया, सनातनधर्मके विषयमें श्वेत कृष्ण कुछ न जाना, जाना भी तो यही जाना कि मध्य एसिया निवासी एक एरियन् जातिके लोग ही प्रायः चारों ओर फैले हैं और उन में से जो भारत वर्षमें आये उन के वंश में हम लोग हैं उन्हीं की भाषा से निकली भाषा संस्कृत है, उन्हींके मतसे निकला मत सनातनधर्म कहलाता है और उन्हींके कुल कमल

दिवाकर हम लोग हैं—जिनकी समुद्रके तल तक पहुंचने वाली बुद्धि में यह बात चटपट समा गई कि न भारतवर्ष हमारा और न हम भारतवर्षके प्रत्युत जिस जाति को लोग म्लेच्छ म्लेच्छ कहके घृणा करते हैं वही हमारे भाई बन्धु, और कुल प्रवर्त्तक हैं क्या ऐसे बालकोंको श्राद्ध तर्पण तीर्थ यात्रा और मूर्तिपूजा पर कोई शंका हो तो क्या बडे आश्चर्य की बात है ? और क्या इस विषय में इन बच्चों का कुछ भी दोष है ?---सच पूछिये तो इसमें हम लोगों का दोष है जो बालकों को स्वधर्मपुस्तक पहले पढाना तो जहां तहां कहीं सभा, समाज, कथा सत्सङ्ग आदि हो तो भी कहते हैं कि यहां बच्चों का क्या काम है ? यहां तो हम बुड्ढों का कामहै । और जहां बाई जी का नाच हो वहां बच्चोंको लेजा सबके आगे बैठाते हैं और उस "नैनाबान" में अभिज्ञ करते जाते हैं-- तो प्रियवर इस में सवर्था दोष हम लोगोंका है न कि उन दुधमुहें बालकोंका—और येही कारण है कि इन दिनों प्रधानतः मूर्त्तिपूजाके विषय में बहुतों को सन्देह उठ खडे होते हैं—

मुझे किसी मतके विरुद्ध कुछ नहीं कहना है क्योंकि सनातनधर्मका स्वभावही नहीं कि, किसी

दूसरेसे धन और जनकी प्रार्थना करै अथवा इस घमण्डमें भूलै कि पन्द्रह करोड हिन्दू छोड समूचा संसार नरकमें जायगा यह तो कहता है कि "स्वधर्मे मरणं श्रेयः परधर्मो भयावहः" जिससे हम तो समझते हैं कि मुसलमान अपना धर्म छोड ईसाई होजाय तो वह पापी है और ईसाईभी अपना धर्म छोड पारसी होजाय तो वह पापी है फिर हमें क्या पडी है कि हम उन लोगोंके मतका खण्डन मण्डन करें——इसका चसका तो हमारे (दो चार हजार श्रीविशिष्ट) दयानन्दही जी को था कि अपना मत तो डेढ पन्ने में कहा और संसार भरके मतोंसे अहं च त्वं च करते करते सत्यार्थप्रकाशकी भी तोंद थल थल करदी——और सबका ऐक्यहो इस उद्देश्यके साधनमें सबसे झगडेका झण्डा झुमा लम्बे हुऐ——बाबा हमारा तो सनातनधर्म है जिसको इस तलवारकी धारपर चल अमृत पान करनेकी लाख बेर गरजहो वह इसका अवलम्बन करे नहीं ये सूधी होटलोंकी सडकैं पडी हैं चाहे जिधर जाय और चाहे सो करे ।

अच्छा अब हम आप लोगोंको यह दिखलाते हैं कि मूर्त्तिपूजा के विषयमें इनदिनोंके नौसिखुओं को

कितने प्रकार की शङ्का होती हैं फिर उन प्रत्येकका भिन्न विवेचन और उत्तर होने हीसे ठीक २ निर्णय हो जायगा कि मूर्त्तिपूजामें अबभी कोई सन्देहास्पद बात बाकी है कि नहीं—जैसे अदालतमें अलग अलग करके बहस होजानेपर मुकदमा सर्वाङ्ग से निःसन्देह होजाताहै वैसेही आज आप लोग इस बडे शङ्कासागर विषयको भी साङ्गोपाङ्ग सुनिये और निर्णय कर लीजिये ।

आज काल जो प्रश्न प्रायः सुने जाते हैं वे येहैं;—

१ दूसरे के पूजनेसे दूसरेका सन्तोष कैसे ?

२ निराकार की आकार कल्पना कैसी ?

३ व्यापकता समझ मूर्त्तिपूजाकी जाय तो किसी प्रधान ही पदार्थ की पूजा क्यों होती है ?

४ निराकारकी उपासना ध्यानादि द्वारा होसकती है तो मूर्त्ति पूजा क्यों ?

५ मूर्त्ति पूजासे भारतवर्षकी इतनी अवनति होगई और कुछ लाभ नहीं तो फिर क्यों ?

६ सम्प्रदाय भेद क्यों ?

७ वेद विरुद्ध क्यों करना ?

८ प्रमाण क्या ?

बस मेरी समझमें तो इतनेही प्रकारके प्रश्न होते हैं और हो सक्ते हैं और इनी प्रश्नोंके मथनकी आवश्यकता है पर हां यदि आप लोगोंकी समझमें कोई प्रश्न रहगया हो तो बोलिये मैं उसे भी लिखलूं। (ठीक है ठीक है)।

अच्छा तो पहला प्रश्न है कि,—

("दूसरेके पूजनसे दूसरेका तोष कैसे ?

आप लोग भलीभांति एकाग्र होकर देखिये किस भाव भङ्गीसे भरा यह प्रश्न है कि ' 'दूसरेके पूजनसे दूसरेका तोष कैसे" अर्थात् उनके जीमें इस प्रकारके उदाहरण भरे हैं कि हम खांय तो हमारे बापका पेट भरै कैसे ? और हम दीवारको अतर लगावें तो हमारी नानीको आनन्द हो कैसे ? ठीक है बाबू तुमारे प्रश्नके भिन्न भिन्न अंशपर भिन्न भिन्न दोष हैं सो कुछ सोच विचारके सुनो और समझोगे तो फिर सन्देह नहीं रह जायगा।

(क) इस प्रश्नहीसे जान पड़ता है कि प्रश्न कर्त्ताने जगत्को परमात्मासे परम भिन्न मान रक्खा है परन्तु गम्भीर विचारवाला विज्ञ पुरुष तो कदापि इसको स्वीकार नहीं कर सकता।

जब हम लोग एक छोटेसे कुन्दके फूलकी सुन्दरताको देखते हैं तो उसमें भी एक रूप माधुरी ऐसी अपूर्व पाते हैं कि उसपर काली पीली चितकबरी सैकडों तितलियां मण्डरा रहीं हैं. मकरन्द चूँसनेके लिये सैकडों भौंरे गुञ्जार सुना परिक्रमा कर रहे हैं. और जो पथिक समीप होकर निकलता है वही सुगंधसे मोहित हो अचानक ठठक जाता है, जिसने देखा उसकी आंखें फस गईं जिसने सूँघा वह कुछ क्षणोंके लिये अपनेसे बाहर होगया और जिसने पाया वह कोई सिरपर और कोई कानपर धरने लगा। अब कहिये तो क्या उस परमात्माको छोड़ और भी कोई मधुरता, मनहरता और शक्तियोंका भण्डार है ? जहांसे ये सब गुण फूलमें आगये क्या परमात्मासे भिन्न ऐसा भी कोई चमत्कारोंका महासागर है जिसने सूर्य चन्द्र और तारोंको प्रकाश दिया वनस्पति और भांति भांतिके पक्षियोंको चित्र विचित्र रङ्ग और कलकूजित दिया तथा इस विशाल पृथ्वीको धारण शक्ति दी ? और जो सब प्रकारकी शक्ति और ही और स्थानोंमें आगई हैं तो वह विचारा सर्व शक्तिमान् क्या उसमें तो एक शक्ति भी न बचैगी और फिर उसके स्वीकार-

हीसे क्या प्रयोजन कदापि नहीं ! कदापि नहीं ! इन सांसारिक पदार्थोंमें जितनी मनोहरता है सो उसी परमात्माकी मनोहरता कलारूपसे झलक रही है, और जितनी शक्ति हैं सो उसीकी शक्ति हैं और सिवाय उसके कुछ भिन्न बचता नहीं है प्रत्युत समस्त जगत् उसीका स्वरूप है। देखिये वेद भी इसी बातको निरूपण कर रहा है,—"पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" (जो हुआ और होनेवाला है सो सब परमेश्वर ही है) "तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" (जो सबको एक समझता है उसे न मोह है न शोक है) "स आत्मानं स्वयमकुरुत" (उसने स्वयं अपनेहीको श्रेष्ठ किया) "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (यह सब ब्रह्म) है "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म" (एक ही अद्वितीय ब्रह्म) है "नेहनानास्ति किञ्चन" (यहां भिन्न भिन्न २ कुछ नहीं है इत्यादि २ इसलिये जगत् और ब्रह्मको परस्पर भिन्न समझके जो यह आशंका की सो व्यर्थ है क्योंकि "सति कुड्ये चित्रम्" भीत हो तो उसपर चित्रभी लिखो पर जब भेद ही नहीं सिद्ध है तो भेद मान कर उस पर आशङ्का भी ठीक नहीं होसकती।

अब यदि कहो कि साहब, तो द्वैतवाद की क्या गति होगी ? तो सिद्धान्त यह है कि, द्वैतवादी सा-

ध्वादि भी यही कहते हैं कि सेवावस्थामें अभेद ज्ञान नहीं रह सक्ता और अभेदज्ञान सिद्ध होनेसे सेवा नहीं हो सक्ती इसलिये सेवावस्थामें भेद ज्ञान आवश्यक है—और कुछ इसके समीप २ गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है कि, "मैं सेवक सुचराचर रूपरासि भगवन्त" पर ये भिन्नाभिन्न भावना मात्र हैं—यदि दार्शनिक सिद्धान्त देखिये तो परमद्वैतवादी साङ्ख्यदर्शनके भाष्यके आरम्भमें देखिये वहां विज्ञानभिक्षुने स्पष्टही सब दर्शनों की आगे पीछे शृङ्खला बांध अद्वैतवादको सिद्धान्त में रक्खाहै—

फिर हम तो परमात्माको विरुद्धधर्माश्रय कहते हैं अर्थात् परमात्मा वह अपूर्व पदार्थ है जो स्थूल भी सूक्ष्म भी साकार भी निराकार भी एक भी अनेक भी और सगुण भी निर्गुण भी॰ इसका तत्त्व कदाचित् (२) दूसरे प्रश्न के उत्तर में आप लोग ठीक ठीक समझ जांयगे।

(ख) अब फिर उसी प्रश्न की परीक्षा कीजिये देखिये उसमें एक और कितनी बडी भारी भूल है। प्रश्न है कि, "दूसरेके पूजनसे दूसरेका सन्तोष कैसे"? प्रश्नकर्ताका तात्पर्य ऐसा जान पडता है कि तुम

पत्थर मट्टीकी पूजा करतेहो इससे वह क्योंकर प्रसन्न हो सक्ता है ? पर यह कैसी भूल है !! हम कभी पत्थर मट्टीकी पूजा नहीं करते किन्तु पत्थर मट्टीके आश्रय से उसी सच्चिदानन्द परम पुरुषोत्तमकी पूजा करते हैं। जिस प्राणप्यारेसे मिलनेकी हमें जन्म जन्मांतर से प्यास चली आती है और जिसके विना हमें जगत् जहरसा जान पडताहै उसे हम सर्वव्यापक सुनते हैं। हम हाथ जोड सिर झुका प्रणाम करना चाहते हैं पर उस सर्वव्यापकको प्रणाम करनेके लिये हमारे सिर और हाथ सर्वव्यापकहो नहीं सक्ते हम जब सिर झुकावेंगे तो किसी एकही दिशाकी ओर झुकेगा और हाथभी एकही ओर जुडैगा तो क्या हकपकाकर चुप रह जांय अथवा प्रणाम करैं ? चुप रहनेसे तो भया बस नास्तिकोंके भी परदादा भये ईश्वरको माना जैसा न माना और सिर झुकायातो आप ऐसे बुद्धिके अजीर्ण वाले पुरुष कह उठैंगे कि आप तो दिक्पूंजक हैं—यदि हम ईश्वराय नमः कहैंगे तो आप कहैंगे कि आप तो ई—श्व—र—इन अक्षरोंके पूजक हैं।—पर क्या सच मुच आप ऐसी टोक टाक कर सक्ते है ? कभी नहीं क्योंकि संसारमे एसा कोई है

ही नहीं जो ईश्वर के प्रतिनिधि शब्दोंके झमेलोंमें न पडा हो। मूर्त्तिपूजासे हमारा तात्पर्य है कि किसी प्रतिनिधिके द्वारा ईश्वरका पूजन। हमारे आपमें भेद इतना ही रहा कि—नाम रूप दो प्रतिनिधि होतेहैं सो आप नाम प्रतिनिधि तकही पहुंचे हम रूप प्रतिनिधि तक मानते हैं और किसी मूर्त्तिको उसीका प्रतिनिधि मूर्तिके द्वारा उसीका पूजन करते हैं न कि, दूसरेके पूजनसे दूसरेको सन्तोष पहुंचातेहैं।

यदि इसीको दूसरेके पूजनेसे दूसरेका तोष कहते हों तब तो आप भी यदि आस्तिक हैं तो इस बात से बचे नहीं हैं, यदि आप (impersonal God) निराकार परमात्मा के ही माननेवाले छुटे हुए थियोसोफिस्ट सब थियोसोफिस्ट ऐसे नहीं हैं पर कोई कोई (माईके लाल ऐसे भी मिल जाते हैं) हैं, तब अज्ञा चक्र के प्रकाश को और अनाहत नादको उसीका प्रतिनिधि क्यों मानते हैं, यदि आप ब्रह्मसमाजी हैं तो तान पूरे और सङ्गीत, ब्रह्म अक्षर और झण्डे पताकोंके झमेलेमें क्यों पड़ेहैं ? अवश्य इसे आप उसीके मिलनेकी सीढ़ी समझतेहैं अथवा उसीका किसी प्रकार प्रतिनिधि समझते हैं। तो हुआ हमारी ही बात आपने मानी पर

हम एक आचार्योंकी प्रणाली शृंखलाबद्ध हैं और आप उच्छृंखल हैं । यदि आप सबसे गये गुजरे समाजीहैं तब आप तो अभी किसी पक्के ढङ्गही पर नहीं हैं पर तौ भी आप उसीके प्रतिनिधि स्वरूप गायत्री, वेदके मन्त्र और ईश्वरादि शब्दको प्रतिनिधि मानतेहैं । न मानते तो हमसे प्रश्न करनेकेलिये भी ईश्वर शब्द एक बेर भी मुहँसे नहीं निकाल सक्ते ।

और भला मानलीजिये कि कोई अभागा नास्तिकही ईश्वरके विषयमें पूछे तो उससे पूछाजा सक्ता है कि बाबू "ईश्वर" शब्दके विषयमें तुम्हारा प्रश्न है कि ईश्वर पदार्थ जो परम पुरुषोत्तम हैं उनके विषयमें ! यदि कहो शब्दके विषयमें तब तो धन्य है तुम्हारी बुद्धिको कि "ईश्वर" शब्द बोलतेभी हो और उसका होना स्वीकार भी नहीं करते हो, और यदि कहो कि ईश्वर पदार्थ जो परमपुरुषोत्तम है उसके विषयमें, और उसीका प्रतिनिधि ईश्वर शब्द हमने कहाहै । तब तो तुम्हारे मतमें जो पदार्थ नहीं है उसका प्रतिनिधि तुमने कैसे स्थिर किया ॥ अब कहो कि भाई वह हो अथवा न हो पर सन्देहावस्थामें भी प्रतिनिधि स्थापन करके हम निर्णय करते हैं, तब हमारे मतमें तो

उसके होनेसे तो कोई सन्देहही नहीं है पर फिर हम इस असन्देहावस्थामें उसका प्रतिनिधि स्थापन करके उसकी उपासना करते हैं तोदोष क्या है॥ (करतलध्वनि और साधुवाद)

अब एक बात आप लोग अधिक ध्यान देके सुनिये और देखिये कि यदि हमलोग पत्थर और धातुहीकी पूजा करते तो पाषाणमयी शिवमूर्त्तिको सामने रख उसके आगे हाथ जोड क्या कहते। सच मुच उस पत्थर अथवा उस मूर्ति ही की पूजा करना इष्ट होता तबतो कहते कि "हे पाषाण" तुम पहाडकी खानसे निकाले गये ऊपरसे ढलकाये गये घडघडाहटके साथ नीचे आके पडे और धड़ाधड़ तोड़े गये फिर तुम्हारे ऊपर सैकडों टांकी और हथोडे झाड़े गये, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं तुम हमारी रक्षा करो" (सानन्द करतल ध्वनि) जब हम विष्णु भगवान्का स्तवन करते हैं तब क्या कहते हैं—"शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥१॥" शान्त स्वरूप, शेषशय्यामें सोये हुए जिनकी नाभिमें कमल उत्पन्न हुआ है सम्पूर्ण देव-

ताओंके स्वामी संसारके आधार, आकाशके समान सर्व-व्यापी, श्याम वर्ण सुन्दर अंगवाले, श्रीलक्ष्मीके पति, कमलके फूलके समान विशाल और सुन्दर आंखों वाले, योगी जिन्हें ध्यान करनेसे जान सकते हैं, संसारके दुःख छुडानेवाले, सब लोकोंके एकही स्वामी श्री-विष्णु भगवानको नमस्कार करताहूं ॥ १ ॥

और देखिये हमलोग जब शिवमूर्त्तिके सामने स्तवन करते हैं॥ हम कहते हैं कि "एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं समस्तं सत्यं सत्यं नेहनानास्ति किञ्चित् । एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम्"। (काशीखण्डे) अर्थात् एक ब्रह्महीहै दूसरा कोई नहीं है, वह सर्वस्वरूप है, यह सब है सच है इस संसारमें नानापदार्थ कुछ नहीं है। वह एक रुद्र है दूसरा नहीं इसलिये हे परमेश्वर! मैं एक तुम्हारे ही शरणागत होता हूं।

फिर देखिये हमलोग उसी शिवमूर्त्तिके सम्मुख वेदके मन्त्रोंको पढ हाथ जोडते हैं और उन वेदके मन्त्रोंमें केवल उसी परमात्माका वर्णन है तो हम उस परमात्माके पूजक हुए कि उस पाषाण खण्डके? (जयध्वनि)।

इस पर पूछनेवाले यों पूछ सकते हैं कि "ऐसा ही है तो उन मूर्त्तियों और मन्दिरों पर इतना आग्रह क्यों? और उनके आगे इतना आदर सत्कार क्यों"? और पूजा समयके अनन्तर उसपर कोई पैर लगावे तो क्रोध क्यों?"

पर यह अति अल्पज्ञताका प्रश्न है। क्योंकि भगवत्प्राप्ति में जो जो उपाय हैं उन सबका अत्यन्त आदर करना यह आस्तिक मात्रका स्वभाव है। तिस परभी हम लोग तो परमात्मा की सर्वव्यापक शक्तिके ऐसे भक्त हैं कि जिसपर विना पांव रक्खे काम न चले उस पृथ्वी परभी जब पलङ्गसे उठके पांव देते हैं तो प्रणाम करके और क्षमा मांगके। उसका यह श्लोक है "समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे"। फिर जिन पदार्थोंके द्वारा हम लोगोंको भगवत्प्राप्तिका पथ मिलता है उनका आदर हम कब न करेंगे। हमतो उर्दू फारसी और अङ्गरेजी पुस्तकको भी जब किसीको पैर लगाते देखते हैं तो हमारा जी कसमसाने लगता है फिर हम गीता वेद और श्रीमद्भागवतको सिर क्यों न झुकावेंगे और उनका क्यों न आदर करेंगे। हम जिन

घरोंमें रहते हैं उनमें जो भगवत्कला है उसे भी वास्तुदेव कह पूजते हैं फिर जिस ठाकुरद्वारे के द्वार पर जाते ही हमारे ऐसे सहस्रों संसारिकों को संसार भूल जाता है और परमात्मा के स्मरणसे रोमाञ्च और पुलक होजाता है उस ठाकुरद्वारेको सारे रस्ते साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते जाना क्या हमारे लिये कुछ बहुत भारी बात है ? हम तो जिस मालासे भगवन्नाम जपते हैं उस मालाका आदर करते हैं जिस स्थान पर बैठ उस परमपुरुषार्थका अनुष्ठान करते हैं उस स्थानका आदर करते हैं और जिस गुरुसे उस विषयमें उपदेश पाते हैं उसे जबतक जीते हैं तब तक मानते हैं फिर जिस मूर्त्तिको लक्ष्य कर जगदीश की सेवा करें उस मूर्त्तिके लिये प्राण तक देनेको क्यों न तैयार हों ? (करतल ध्वनि) फिर जो प्रश्न करता है कि "पूजा समयके अनन्तर पाँव छुआनेमें क्रोध क्यों" ? वह कदाचित् समझता हो कि उपदेश ले लेनेके अनन्तर गुरुको गाली देने मैं दोष क्या ? और गऊका दूध बन्ध होजाय तो उसे स्वाहा कर जाने में दोष क्या ? (दयानन्दजीने अपने सत्यार्थप्रकाशमें यही आज्ञा दीहै जिसे देखना हो १ म संस्करण देखले)

परन्तु बाबा ! हम भारतवासियों का ऐसा कठोर हृदय नहीं है हम लोग तो अन्न, जल, दावात, कलम, से लेकर सूर्य, चन्द्र तक का स्तव करते हैं फिर जिसको भगवत्प्रतिनिधि और भगवदुपासना का प्रधान आश्रय समझते हैं उसका आदर क्यों न करेंगे।

इस विषय को हमारे प्रश्न कर्त्ता भलेही मूर्त्ति-पूजक न हों पर अपनेही हृदयसे मिलान करके जाँच लें कि वे भी मक्का, मस्जिद, चर्च, ब्रह्ममन्दिर, और अपने गुरु संन्यासी बाबाके चित्र आदि को सन्मान देते हैं कि नहीं ? भेद इतनाही हो तो हो कि आप कुछ थोड़े ही में अपने आदर सत्कारको समाप्त कर देते होंगे और हम कुछ लम्बा चरखा निकालते होंगे। इस विषय में हम यही कहेंगे कि भारतवर्ष उपासनाके विषयमें बड़ा विद्वान और बहुत चढ़ा बढ़ा है इसलिये इसकी उपासनाभी बहुत चढ़ी बढ़ी है। किसी भारतवासी महाशयके बालक को अपने गुरू से न तो गुड्मौर्निङ्ग सर (Good morning Sir) कहके हाथ झुलानेमें सन्तोष होता है और न कोरी कोरी आदाव अर्ज में, यह तो जब तक साष्टाङ्ग प्रणाम कर गुरू महाराजके चरण की रज अपने सिर पर न

रक्खे तब तब इसकी भक्ति की उलेल ही नहीं थमे गी । बस समझ लीजिये हम लोगोंके हृदयमें आदर सत्कार भक्ति और श्रद्धा की वेही तरङ्गें हैं जब उमगीं तब कौन रोक सक्ता है । (जयध्वनि)

अब हम इस प्रकरणको यहां समाप्त करते हैं कि, हम—

दूसरेकी पूजासे दूसरे को नहीं तुष्ट कहैते परन्तु मूर्त्ति आदि का आश्रय ले उसीकी पूजासे उसी को तुष्ट करना चाहते हैं ।

(जयध्वनि)

(ग) अब भला फिर एक बेर उस प्रश्नको देखिये मूर्खोंके लिये तो पूछने वाले क्या भारी और सङ्गीन प्रश्न किया है पर आप लोग विचार शील हैं कुछ गम्भीरतासे देखिये तो यह प्रश्न कैसा निर्मूल और बे जड पेड़ का है ? मानो प्रश्न करने वाले ने तो दूसरे के पूजने से दूसरेको तुष्ट करना चाहाही नहीं है ! ! वाह वाह ! ! मान भी लिया जाय कि हम पूजन दूसरेका करते हैं और तुष्ट दूसरे को करना चाहते हैं, तो यह किस युक्तिसे असम्भव है । बहुत दूर जानेकी आवश्यकता नहीं थोड़ेही दिन बीते हैं

इसी भारतवर्ष में आपही लोगोंके सामने महारानी विकटोरिया के ५० बरस राज्य करनेका जुबिली महोत्सव हुआ था—आप लोग भली भाँति जानते हैं कि उस समय क्या क्या हुआ था क्योंकि जो उस समय अनसमझ बालक था वह आजभी मेरी वक्तृता में उपस्थित नहीं है यह मुझे पूरा विश्वास है! (करतल ध्वनि) देखिये तो उस समय क्या क्या हुआ था उस समय लाखों करोडों दीवे जलाये गये थे समुद्र के जहाजोंसे लेकर पर्वतके शृङ्गों तक ध्वजा दोधूयमान थीं, बन्दनवार और फूलकी मालोंसे नगर नगर जगर मगर होगये थे, और जिले, जिले, परगने, परगने, बड़ी बड़ी सभायें हुईं थीं, जिनमें बहुधा महारानी विकटोरियाकी बड़ी बड़ी तसबीरें लटकाईं गईं, उनके दोनों ओर ध्वजा और फूल मालाओंके जाल झमकाये गये, और एक प्रधान सिंहासन पर उस उस प्रान्तके प्रधान कर्मचारी बड़े आदरके साथ बैठाये गये, उनके आगे झण्डे उड़ाये गये, कितनेही कवियोंने पोथियां बना २ उनके नजरकीं जयध्वनि हुई, और बडे ढोल ठमक्केके साथ "God save the queen" गीत गाया और उन्हीं सिंहासनारूढ प्रधानाधिकारी

का इतना सम्मान किया गया कि मानों साक्षात् महारानी ही उपस्थित हों।

अब हम इस विषय पर पूछते हैं कि बाबा यह क्यों? इस उन्नीसवीं शताब्दीमें यह क्यों? जहां मूर्त्तिपूजाके नाम सुनते लोगोंकी पसुरीमें सूल घलने लगते हैं वहां यह घोर अनर्थ क्यों? जो बकते फिरते हैं कि "क्या इस पूजा के दीवेका उजाला वैकुण्ठ तक जाता है? क्या इस कीर्तन की आवाज स्वर्ग तक पहुंचती है"? उन विशाल बुद्धि वाले "enliglend, sivilised, critice, Scientific, लोगोंके समाजमें आज दीपावली और गीत क्यों??? (जयध्वनि)।

क्या जुबली उत्सवके प्रत्येक दीपोंका उजाला इङ्गलैण्ड के लण्डन शहरमें महारानीके कमरे में पहुंचा था? यह हुआ हो तब तो महारानीको करोड़ों दीपक, महताव, और विद्युत्प्रदीप (electrical light) देखकर चकाचौंधी आगई होगी? (करतल ध्वनि)–

क्या इन प्रत्येक बाजे, बन्दूक तोप और गीतोंका महानाद महारानीके कानतक पहुँचा था?—ऐसा हुआ हो तब तो तुमने जुबलीका उत्सव किया या कानफोड़नेका उपाय किया (जयध्वनि और करतल ध्वनि)—

अब कहिये तो जैसे आप लोग बेसिर पैर के प्रश्न मूर्त्तिपूजकों पर करते हैं वैसे क्या आप से कोई नहीं पूछ सक्ता है कि,—

आप लोगोंने महाराणी की तसवीरोंकी बड़ी प्रतिष्ठा की थी इस से महाराणीका तोष कैसे होगा ?

आप लोगोंने जिन ड्रईंयल और सुछन्दर अप्सरोंके आगे झण्डा उठा कूद कूद फूल उछाले थे क्या वेही रानी थीं ? नहीं तो जुबिली रानी की और उछलें दूसरोंके आगे सो क्यों ?

क्या रानीने कभी दीवे नहीं देखे हैं और बाजे नहीं सुने हैं कि तुमने इन पदार्थों से उसके सन्तोषके लिये इतनी धूम करी ?

आप लोगोंने इतने Scientific critic होकर यह किस युक्तिसे सिद्ध किया कि आतसबाजी और लाखों मन तेलके साथ करोड़ों रुपयोंमें आग लगनेसे चक्रवर्त्तिनी प्रसन्न होगी ?

जो रुपया इन दिनों भारतवर्षियोंके रुधिर बिन्दु सदृश समझा जाता है वह किन ग्रन्थोंकी, किन युक्तियोंके अनुसार किस वैदिकी प्रमाणके अनुसार क्यों धूलमें मिलाया गया ?

(विशेष जयध्वनि)

यदि कहिये कि हमारा राज भक्तिका उद्गार हम रोक नहीं सक्ते चाहे कोई युक्ति हो या न हो। तो उपासक लोगही भक्तिका उद्गार कब रोक सक्ते हैं?

यदि कहिये कि भलेही कान तक आवाज न पहुँचे और नाक तक सुगन्ध न पहुँचे पर महारानीको जब मालूम होगा कि भारतवर्षीय हमारे लिये इतने उछले कूदे तो बड़ी प्रसन्न होंगी। तो फिर जिस जगदीश्वरको पूर्णसत्तासे सब स्थानमें विद्यमान प्रायः सभी समझते हैं, जिसके लिये अंगरेजीमें लिखा है कि "His centre is every where and circumference no where" (उसका केन्द्र सब स्थानमें है और परिधि कहीं नहीं) और जिसे वेद तक कहता है कि "पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः" जो सचमुच हमारी प्रार्थनाओंको सुनता है और हमारी रचनाओंको देखता है।

क्या वह हमारे सच्चे प्रेमके भरे हुए भावोंको जान कर भी प्रसन्न न होगा? (करतलध्वनि)।

यदि कहिये कि इन इन हाकिमोंको और चित्रोंको हमने महारानीका प्रतिनिधि माना। तो क्या हम परमात्माका प्रतिनिधि किसीको मानें तो दोष है?

यदि कहिये कि रानी प्रसन्न हो चाहे अप्रसन्न हो महाराजोंका तत्त्व समझना कठिन है पर हम प्रजाका जो काम है सो हमने किया तो "शिव तत्त्वं न जानामि कीदृशोसि महेश्वर। यादृशोसि महादेव तादृशाय नमो नमः" ऐसा निश्चय कर सेवा करनेवालोंका अपराध क्या ?

यदि कहिये कि साहब यह हम लोगोंकी रीति है कि ऐसा हो तो ऐसा करना वही करते हैं। तो साम्प्रदायिकोंकी रीतिपर चिढ़ क्यों ?

बस आप लोगोंके इस चरखेको घोट घोट कितना समय नष्ट करैं ? बुद्धिमानके लिये थोड़ाही बहुत है। इससे आप लोग स्वयं समझ लो जिसे कि जो लोग स्वयं दूसरेके पूजनेसे (आदर करनेसे) दूसरेका सन्तोष करते हैं उनका ईश्वरोपासनके विषयमें यह प्रश्न कैसी अज्ञतासे भरा है।

इस प्रकरणसे फलित यह समझिये कि—

जब प्रश्न कर्त्ता स्वयं दूसरेके आदर सत्कारसे दूसरेको सन्तुष्ट करना मानते हैं तो यह प्रश्न कैसे करसक्ते हैं ?

(घ) अब हम कहते हैं कि बाबा ! मान भी लिया जाय कि मूर्त्तिपूजक लोग भूलते हैं और भ्रमही भ्रममें

पड़े हुए तन मन धन गवाँ रहे हैं तो क्या फिर ईश्वर प्रसन्न न होंगे ?

परमात्मा तो घट घट में व्याप्त हैं "ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" (गीता) "अनां अकरवो एलैका मिन हब्लिल् वरीद" (कुरान) "दिल के आईने में है तसवीरे यार। ज़ब जरा गरदन झुकाई देखली" यह सब जानता है तो क्या वह सर्वशक्तिमान् हृदय में बैठा हुआ भी हमलोगों के हृदय का हाल नहीं जानता है ? क्या उसे यह नहीं ज्ञान है कि सैकड़ों पुरुष इस कृष्णमूर्त्तिके आगे कृष्ण कृष्ण हरे हरे कह उछल रहे हैं और कूदरहे हैं सो मुझे प्रसन्न करने के लिये उन्मत्त हो रहे हैं" ? क्या वह नहीं जानता कि वह मेरा नाम समझ कृष्ण कृष्ण कहता है ? क्या वह नहीं जानता कि इन लोगों को अपने वस्त्र और शरीर की सुध तक नहीं" है और वे आनन्दाश्रु की धाराओं से पृथ्वी को सींच रहे हैं यह उनका मेरे ऊपर पूर्ण अनुरागका प्रभाव है ? क्या उसे इतनी सुध नहीं है कि वे लोग हिमालयसे नीलगिरि तक के पहाड़ों को ढकढोर ते फिरते हैं, गङ्गासागर से

द्वारका तकके जलाशयों में नहाते हैं और मन्दिर मन्दिरमें जय जय कर बे-चेत हो साष्टाङ्ग डण्डवत् करते हैं सो मेरे पानेके लिये ? क्या उसे इतना चेत नहीं है कि ये लोग मेरे ऐसे अनन्य प्रेमी और विश्वासी हैं कि मेरे लिये स्त्री पुत्रका स्नेह छोडा, मेरे लिये उत्तम अन्न वस्त्र छोड़ा, मेरे लिये अपने शरीर को भी कुछ न गिना और इस शीतकाल में हिमालयके समीपसे गङ्गाजल की कावड़ कन्धे पर धर, खांसी और दुर्बलतासे शिथिल कण्ठसे मेरे ही गीत गाते, बिवाई फटे पांवोंसे मेरे ही नाम पर नाचते और ठण्ढी हवासे जकड़े हाथ से झण्डा उठाते मेरे ही पानेके बिश्वास से वैद्यनाथ की ओर चलेजाते हैं ? क्या वह यह नहीं देखता है कि यह मेरे ऊपर अपने प्राणों को वारके फेंक देने वाला एक ऐसा हठी समाज है कि जहां सुना कि हिमालय में गलने से ईश्वर मिलते हैं, तो गलनेको तैयार, जहां सुना कि आगमें जलनेसे ईश्वर मिलते हैं तो जलनेको तैयार जहां सुना कि जगन्नाथ दर्शनसे भगवत् प्राप्ति होती है कि बस भलेही घरके लोग चेंचें मेंमें करते रहें ? भलेही अपने सामने ही हैजेसे हजारों आदमी

मरते जांय ! भलेही साथियोंको जङ्गली जानवर उठा लेजांय, ! और भलेही अपने को भीख मांग मांग कर जाना हो पर जै जगन्नाथ कह चलने को तैयार ! क्या उसे इतना विदित नहीं है कि इस के रोमाञ्च, कम्प, गद्गदस्वर, और अश्रुपात मेरे स्मरण से हुए हैं ?

और क्या उसे दूसरे विरोधी पक्षके विषयमें यह नहीं विदित है कि यह वह समाज है जिसका मेरे सच्चे भक्तों की निन्दा करना ही प्रधान कर्त्तव्य है ! और क्या उसे इतनी समझ नहीं है कि ये वे कच्चे और चञ्चल हृदय वाले अर्भक हैं जो एक दिन मुसलमानही कुरान बगलमें दबा मेरे सामने आते हैं दूसरे दिन कुरान पर करकराते बाइबल का बल दिखाते चर्च के दरवाजे खडे चर्र चर्र करते हैं तीसरे दिन बाइबल पर भी बलात्कार कर चर्चकी चर्चा छोड़, ब्राह्मीका लिबास पहन मुझे अकिञ्चित्करबना टेबुलोंकी उपासना करते हैं, चौथे दिन वेदकी भी नाक काटते हुए, केवल स्टेशन के होटलों की तैयारियों पर जीभ लपलपाते हुए अपने बडोंकी मूर्खसहस्र नामसे स्तुति करते हुए यत्तु, किन्तु परन्तु बनगये और पांचवें दिन खासे चोखे चङ्गे नास्तिक बनगये ?

वाबा हम लोग तो यह समझते हैं कि मान भी लियाजाय कि मूर्त्तिपूजक लोग भूलेही हों और उनने अनुपायही को उपाय समझा हो पर तोभी यदि हृदय सच्चा, प्रेम पूरा, और विश्वास पक्का है तो उन्हें भगवत्प्राप्ति ही होगी इसमें सन्देह नहीं। और दूसरे लोगों ने भलेही तिलक के लेप से चेहरा न बिगाड़ा हो, भलेही साबुन के रगड़े से चौगुने गोरे होगये हों, और भलेही जाति पांति के कोटि कोटि बन्धन से छूट गये हों पर,

"कथं विना रोमहर्षं, द्रवता चेतसा विना।
विनानन्दाश्रुकलया, शुध्येद्भक्त्या विनाशयः"

और

"भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम्"

कवीरदासने भी कहाहै कि "सांचे मनके मीता प्रभुहो सांचे मनके मीता" तब कहिये सच्चा मन हम निष्काम भक्ति की प्रशंसा करने वालोंका है अथवा उन लोगोंका है जो सब समय तो परनिन्दामें लगाते हैं पर अपनी ईश्वरोपासना "कल तो रोटी दी आज भी रोटी दे" ऐसे वाक्यों पर समाप्त करते हैं,

फलित यह हुआ कि,

"यदि मानभी लियाजाय कि मूर्त्तिपूजक लोग भ्रान्त हैं तो यदि उनका निश्छल भक्तिभाव है तो ईश्वर मिलैंहींगे, और जो लोग दिन दिन नये मत स्वीकार करतेहैं और छल बलसे भरे औरों को भी भरमाकर अपने ऐसा बनाना चाहतेहैं, उनको तो भगवत्प्राप्ति कभी सम्भव नहीं"

जयध्वनि।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि,

(२) "निराकार की आकारकल्पना कैसी ?"

बाबा इसमें निराकार और साकार का प्रपञ्च है। और निराकार साकार का ऐसा गम्भीर विषय है कि दोनों पक्ष में सैकड़ों सहस्रों ग्रन्थ बनगये और बनतेही जातेहैं। जितनी दूरतक चढ़े बढे शास्त्रार्थ उन लोगों के होचुके हैं वहांतक तो आज काल के झगड़ालू छोकड़ों को सपना भी न आया होगा।

जिसने यह प्रश्न किया है निःसन्देह उसने ईश्वर को निराकार समझ लियाहै। इसलिये मैं मूर्तिपूजकों का जीवन धन साकार वाद संक्षेप से आप लोगों को दिखलाता हूं,।

(क) आप लोगों को स्मरण होगा कि मैं प्रथम प्रश्न के विचार में यह दिखला चुकाहूं कि ब्रह्म और जगत् में अभेद है तब पहले तो इसीसे ब्रह्म साकार है यह सिद्ध हुआ क्योंकि जब साकार से अभिन्न है तो आकार का आश्रय भी अन्ततः वही हुआ।

(ख) अब कोई कहे कि "कार्यदशा में जगद्रूप ब्रह्म साकार सिद्ध हो तो हो पर तो भी कारणस्वरूप निर्लेप सच्चिदानन्द ब्रह्म तो इन युक्तियों से साकार नहीं सिद्ध होते हैं" तो यह भी बात ठीक नहीं क्योंकि मूर्त्ति पूजकों का प्रायः सत्कार्य वाद है और सत्कार्य वादका यह तात्पर्य है कि कार्य अपनी उत्पत्तिके पहले भी किसी न किसी अवस्थामें विद्यमान रहता है और जो पहले से है ही नहीं वह किसी प्रकार प्रगट ही नहीं हो सक्ता। तिलमें तेल है तो वह प्रगट भी हो सक्ता है पर बालू से तेल नहीं हीं निकलसक्ता इसी सिद्धान्त पर भगवद्वचन है कि "नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः"। ईश्वरकृष्ण की साङ्ख्य कारिका "असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्य्यम्"॥ श्रुति "सदेव-सौम्येदमग्र आसीत्" इत्यादि।

(ग) इसी साकारता को देखिये वेद किस स्पष्टतासे कहरहाहै कि "सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्" पुरुष के सहस्रों शिर हैं सहस्रों आँखें और सहस्रों पांव हैं क्या इसका यह अर्थ किसी नये वैदिक ने समझ रक्खा है कि उसको न सिर हैं न आंख हैं न पांव हैं" ? (जयध्वनि)

अब यदि कोई कोई कहैं कि "साहब वह मन्त्र तो विराटका वर्णन करता है तो उससे तो हारके यही कहना होगा कि तुम वज्र मूर्ख हो तुम्हें ग्रन्थके पूर्वापर भागका अणुमात्र भी अनुसन्धान नहीं देखो वेदने पहले मन्त्रमें "सहस्रशीर्षा" कह उसे साकार कहा, फिर "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्" कह कर उसको सर्वस्वरूप कहा फिर उसकी महिमाका वर्णन किया और तब कहा कि "ततो विराडऽजायत" (उससे विराट् उत्पन्न हुआ) तो प्रथमही मन्त्र विराट्के वर्णनमें कैसे आ सकता है ? (करतल ध्वनि और जय जय ध्वनि)

फिर वेद उसीको और भी स्पष्ट किये देता है कि "अग्निर्देवता वातो देवता" इत्यादि और "नमो ह्रस्वाय च वामनाय च" इत्यादि अब देखिये कि

केवल जगतही के आकारोंसे ईश्वरका आकार बता सिद्ध करनेमें वेदको सन्तोष न हुआ परन्तु जब इच्छा हो तब रामकृष्णादि रूपसे प्रगट कर लें ऐसे किसी विशेष आकारको लक्ष्य कर भी वेदने कहा कि " याते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी" "बाहुभ्या-मुत ते नमः" " स बाहुभ्यां धमति" इत्यादि तो युक्तिसे भी भिन्न भिन्न आकार और गुणोंका भण्डार कोई ईश्वरसे भिन्न मानाजाय तो निराकार निरीह, निर्गुण, मन और वाणीके अगोचर जगत्से असम्बद्ध परमात्माको मानना न माननेके बराबर ठहरता है। और यदि कोई वेदादि प्रमाण मानें तो वेदसे भी साकारताही अधिक सिद्ध होती है (इस विषयका इतर विशेष किसीको देखना हो तो वेदान्त सूत्रपर अणुभाष्य देखे) हमको उन ब्रह्मवादी और निराकारवादी बालकोंपर शोक होता है जो गीताको प्रमाण मानकर भी ईश्वरकी साकारतामें सन्देह रखते हैं। जिस गीताको परमात्माने स्वयं अपने साकार कृष्णरूपसे कहा और जिस गीतामें उसी साकाररूपसे "अहं विवस्वते योगं" "पश्य मे पार्थ रूपाणि" "विश्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो" "मामेव ये प्रपद्यन्ते"

"मन्मना भव मद्भक्तो" "मामेकं शरणं व्रज" इत्यादि सैकड़ों वाक्योंसे भगवान् उसी साकाररूपको ब्रह्मस्वरूप और ईश्वरस्वरूप मानकर मैं सर्वव्यापी हूं मेरे शरण आ इत्यादि उपदेश कर रहे हैं। उस गीताको मानकर मैं नहीं जानता किस मुँहसे कोई कह सक्ता है कि ईश्वर साकार नहीं (जयध्वनि)

यदि ईश्वर साकार नहीं तो अवश्य कृष्ण ईश्वर नहीं थे। और जब कृष्ण ईश्वर नहीं थे तो उनने गीतामें अर्जुनको अपने शरण आना और अपना सर्व व्यापकत्वादि गुणविशिष्ट होना क्यों प्रगट किया? और स्पष्टरूपसे यह क्यों कहा कि "अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्। परं भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्"। (मैंने मनुष्य रूप धारण किया है इसलिये मूढ़ लोग मेरा अवहेलन करते हैं वे मेरे इस प्रभावको नहीं जानते कि मैं लोकमहेश्वर हूँ इत्यादि, इत्यादि)

अब कहिये जब परमेश्वरकी साकारताही सिद्ध होगई तो इस प्रश्नको सांस लेनेका अवकाश कहां रहा? (जयध्वनि)

(और करतलध्वनि)

(घ) इस पर यह प्रश्न होसकता है कि "जब सृष्टिके पूर्व भी आकार थे ही तो सृष्टिने क्या किया ? और यदि पहले नहीं थे तो उस अवस्थामें ब्रह्मकी निराकारता सिद्ध होगई" परन्तु इसका उत्तर यह है कि, जैसे किसी पत्थरके टुकड़ेसे एक चतुर कारीगर चाहे तो पेड़ बना सक्ता है चाहे हाथी बना सक्ता है और चाहे घोड़ा बना सक्ता है। पर देखिये इस आकारोंको वह बाहरसे लाकर उसमें रख देता है कि, वे आकार पहलेहीसे उसमें हैं ? विचारसे देखनेमें स्पष्ट विदित होगा कि यदि उसने इस पत्थरका घोड़ा बनाया तो यह आकार पहलेहीसे उसमें था पर हां कुछ पाषाण इस आकारको ढापें इसके चारोंओर था उसे इसने टांकीसे झाड़दिया है। अर्थात् छिपे आकारको प्रगट भर करदिया है। वैसेही परमात्मामें तिरोभूत आकारोंहींका सृष्टिमें प्रादुर्भाव होता है। और देखिये, जैसे एक हाथके घनात्मक पत्थरमें उससे छोटे जितने आकार हैं वे सब प्रगट किये जासक्ते हैं और इसी कारण वह कोटि कोटि आकारवाला कहा जासक्ता है परन्तु उसमें एक हाथसे बड़ा कोई आकार

नहीं वैसेही परमात्मामें भी अपनेसे छोटे सब आकार हैं परन्तु उससे बड़ा कोई आकार नहीं पर परमात्मा सर्वव्यापक है इसलिये उससे बड़ा कोई पदार्थही नहीं होसक्ता तो परमात्मामें सर्वाकार हुए। वहां इसका भी स्मरण रखना चाहिये कि, पत्थर जड और अविच्छिन्न अर्थात् व्याप्य पदार्थ है इसलिये उसके आकारोंका प्रादुर्भाव पराधीन है और पत्थरके कुछ अंश दूर करके और जिस आकारका प्रादुर्भाव करना है उसके चारोंओरसे उन अंशोंका सम्बन्ध हटा देते हैं। परन्तु परमात्मा चेतन अद्वितीय और प्रभु है इसलिये अपनी इच्छासे प्रादुर्भाव करता है और सर्वव्यापक है इसलिये न उसके टुकड़े होते हैं और न अंश दूर किये जाते हैं। क्योंकि यह सर्वव्यापकमें सम्भवही नहीं।

(च) अब यदि कोई पूछे कि साहब ! तो " निराकार वादिनी श्रुतियोंकी क्या गति होगी ? " तो ठीक है ईश्वरके अलौकिक आनन्दमय (आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः) आकार हैं और हम लोगोंके लौकिक अस्थिमांसमय आकार हैं, सो निषेधक श्रुतियोंका लौकिकाकार निषेधमें तात्पर्य है और विधा-

यक श्रुतियोंका अलौकिक आनन्दमय आकारके वर्णनमें तात्पर्य है इसलिये श्रुति विरोध नहीं।

यही बोल चालका ढङ्ग लौकिकमें भी देखते हैं कि "इस पत्थरका आकार घोड़े सा नहीं है" अर्थात् प्रादुर्भूत नहीं है इत्यादि।

(छ) एक यह बात भी समझे रहना चाहिये कि ईश्वरकी यह सर्वाकारता ऐसी ही हैं कि निराकारताके लगढग ? इसका एक उदाहरण सुनिये,—

बहुतों का ऐसा मत है कि, प्रकाशमें सब रङ्ग हैं और भिन्न भिन्न प्रकृतिके पदार्थोंके संयोगसे भिन्न भिन्न रङ्गोंका प्रादुर्भाव हो जाता है, पर वे इस रीतिसे मिले हैं कि साधारण अवस्थामें जान पड़ता है कि इसमें कोई रङ्ग नहीं है। दूसरा मत यह कहताहै कि प्रकाशमें कोई रङ्ग नहीं है (यदि है तो भास्वरशुक्ल है) और पदार्थोंमें ही रङ्ग हैं सो उससे प्रकाशित होजातेहैं. प्रकाश ही में रंग होता तो जहां जहां उजाला होताहै वहां वहां रङ्गों की काली पीली घटा सी छा जाती। इस पर पहले मतवाले कहते हैं कि प्रकाशही में सब रङ्गों का सङ्घट्ट है देखो हम तुम्हें प्रत्यक्ष दिखला देते हैं। वे लोग इसपर एक

तिकोना कांच का टुकडा ले घाममें दिखलाते हैं और जब उसके बीचमें होकर सूर्यकी किरणें इन्द्रधनु- की भाँति अलग २ रङ्गों की तहें जमादेती हैं तो कहते हैं देखो अब प्रत्यक्ष हुआ कि प्रकाश में सब रंग मिले हैं। परन्तु दूसरे दलवाले इस पर भी बोल उठते हैं कि जैसे कि न पारा कालाहै न गन्धक काली है पर दोनों मिलाके पीसनेसे काली बुकनी होजाती है, न हरदी लाल है न चूना लाल है पर मिलाने से लाल होजाताहै, न हरताल हरीहै न नील हरी है पर मिलातेही हरी होजाती है वैसेही न काचमें सब रंगहैं और न प्रकाशमें सब रंग हैं पर संयोगसे सब रंग उत्पन्न होते हैं। (करतल ध्वनि)

कहिये दोनों में हारा कौन ? और किसका मत ठीक है ? ध्यान देके देखिये तो "सब की है चोट निसाने पै" जो प्रकाश में सब रंग बतलाते हैं वे भी यह तात्पर्य नहीं रखते हैं कि जिस घर में प्रकाश हो वहां सातों रङ्ग की होली सी होती रहती है, और जो प्रकाश में कोई रङ्ग नहीं बतलाते हैं उन का भी यह तात्पर्य नहीं है कि आकाश में इन्द्रधनुष नहीं होता है अथवा तिकोने काच में होकर जाती हुई किरणें

सतरङ्गा भाव नहीं दिखलाती हैं। वैसे ही सगुण और साकार मानें जाँय तो भी निर्लेप सच्चिदानन्द सर्व-व्यापक ज्यों के त्यों रहे उस में त्रुटि नहीं आसक्ती और निर्गुण माने जांय तो भी कोई त्रुटि नहीं आसक्ती (करतलध्वनि)

अच्छा प्रियवर आप लोग कहिये तो प्रकाश के विषय में आप लोगों की क्या सम्माति है ? प्रकाश निर्वर्ण [बेरङ्ग का colourless] है कि सवर्ण [सब रङ्ग का full of all the colours] है? आप लोगों में प्रायः अँगरेजी भाषा के विद्वान् हैं मुझे विश्वास होता है कि आप लोग प्रकाश को सब रङ्ग वाला ही मानते होंगे (हांहां) तो उसी प्रकार हम लोग भी परमात्मा को सर्वगुणमय ही मानते हैं। जैसे सर्वसाधारण लोग शीघ्र नहीं समझेंगे कि प्रकाश में सब रंग कैसे ? पर तो भी बुद्धिमान् लोग मानते ही हैं। वैसे ही भले ही करोडों की मसझ में न आवे कि परमात्मा सगुण और साकार कैसे हैं पर मूर्त्तिपूजाके आचार्य, उपासना के तत्त्ववेत्ता तो उसे सगुण कहते ही हैं ।(जयध्वनि)

(ज) फिर परमात्मा तो अलौकिक है, वह सर्वा-श्चर्यमय है (आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवच्चैन-

मन्यः शृणोति ॥ गीता) वह महापुरुषही है ऐसा कि उस में गुण भी है गुणाभाव भी है, आकार भी है आकाराभाव भी है, वह सबसे छोटा भी है सबसे बड़ा भी है, और वह अमूर्त्त भी है और मूर्त्तिमान् भी है। उसीका पूरा वर्णन करता करता वेद भी नेति नेति कह उसी का अभाव भी उसीमें बतलाता है। उसीको शुद्धाद्वैतसिद्धान्त एकाएकी विरुद्ध धर्माश्रय कहता है उसीको स्पष्टरूपसे भी वेद कहता है कि "तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदन्ति के" वह चलता है वह नहीं चलता वह दूर है वह पास है) "नमो ह्रस्वाय च दीर्घाय च" छोटेको प्रणाम बडेको प्रणाम "अणोरणीयान् महतो महीयान्" [छोटेसे छोटा और बडेसे बडा] इत्यादि इत्यादि। तो जब उसमें सभी बात सम्भव हैं तो झगड़ा क्या? देखिये यह कितना बड़ा उदारमत है कि सब मतों को अपने अपने ढङ्ग पर सच्चा सिद्ध करता है। जो लोग आज काल के नये देशोन्नतिकारी छोकड़े भर संसारमें एकमत प्रचार कर शान्ति करना चाहते हैं और इस कारण सब मतों का खण्डन कर सब का जी दुखा अशान्ति उत्पन्न करते हैं वे अपना अपना कान

धरके सुनें और देखें कि भारतवर्षीय आचार्य्योंके कैसे गम्भीर और उदार मत हैं कि वे निर्विरोध होकर सिद्ध करते हैं कि ईश्वरमें सब कुछ सम्भव है चाहे जैसा मानों और चाहे जैसे भजो। उसे अल्ला कहो वा गाड् कहो उसके सहस्रों नाम हैं, उसको मक्केमें खोजो वा काशीमें खोजो वह सब जगह है और उसे निराकार कहो वा साकार कहो वह सब कुछ है। देखिये उन धर्मप्रचारकोंका कैसा संकीर्ण और छोटा हृदय है जो रामपरीक्षा आदि कर हिन्दू धर्मका खण्डन करना चाहते हैं अथवा जो सत्यार्थप्रकाशका झण्डा उड़ा क्रिश्चन, मुसल्मान आदिके मतोंका खण्डन कर सबको अन्धेरेमें समझते हैं और अपने ही को प्रकाशमय अग्निवृक्ष समझते हैं (जयध्वनि और करतलध्वनि)

(झ) कैसे आश्चर्य की बात है कि, इसपर कोई ऐसा कह उठते हैं कि यह कयासमें नहीं आता कि कोई पदार्थ ऐसा भी हो कि जो सबसे छोटा भी हो और सबसे बड़ा भी हो। कहो बाबू तुम्हारा कयास [समझ] ही कितना बड़ा ! तुम एक तृणतक का पूरा तत्त्व जान नहीं सकते और इतना लम्बा चौड़ा गणितशास्त्र पढके [२] का ठीक ठीक वर्गमूल तक

नहीं निकाल सक्के। फिर जिसमें वेद तक चकपका रहे हैं वह जो तुम्हारी समझमें न आवे तो क्या तुम्हारी समझहीके अनुसार उसे दालभात कहदें ?

[ट] और यही आप कब प्रतिज्ञा करसकते हैं कि जो कयासमें न आवे उसके अनुसार कुछ न करना और ज्यों ज्यों समझते चलना त्यों त्यों उसके अनुसार चलना ?

जन्मतेही दूध पिया बिना समझे, खेल खेला बिना समझे, पढ़ने लगे बिना समझे, और अब भी हम नहीं देखते कि आप डाक्टरों की दवा यन्त्रोंसे परीक्षा कर पूरी पूरी रीतिसे हानि लाभ समझ लेते हैं तब खाते हैं और रेल और जहाज आदि विद्याको पहले समझ लेते हैं तब रेल और जहाजपर चढ़ते हैं। पर हर्मोनियम कैसे बना है यह कुछ नहीं जानते और दीवा जलतेही टूंटां करना आरम्भ कर देते हैं और भैरवी में क्यों कोमल सुर लगाना और मालकोश में क्यों पञ्चम और ऋषभ छोड़ देना इसे कुछ नहीं जानते पर आ आ आ कर अलापने लगते हैं। इसे भली भाँति सोच लीजिये और निश्चय कीजिये कि प्रत्येक पुरुष अपनी ओरसे समझ लेनेके पहले हीसे उस

काममें लगता है और पीछे समझता है अथवा नहीं भी समझता है। सुनते हैं कि वायुके अंश ईथर (ether) के विषयमें अभीतक कोई पक्का सिद्धान्त नहीं हुआ है पर क्या इस लिये वायुमें निश्वास प्रश्वास नहीं लेते हैं ? चन्द्रमण्डलके विषयमें पूर्ण रीति से नहीं जानते हैं तो क्या चाँदनीमें नहीं निकलते हैं ? वैसेही परिपूर्णरीतिसे परब्रह्मके विषयमें न भी समझ सकें तो क्या उसकी उपासना न करेंगे ?

यहां यों कहा जासकता है कि "हम भलेही दूध पानी दवा हर्मोनियम और रोगोंके विषयमें न समझें पर जिनको समझते हैं कि हमसे बहुतही अधिक समझदार हैं और हमें उपदेश करते हैं उन्हीं पर विश्वास कर हम खाना, पीना, गाना, रेल, जहाज आदि का व्यवहार करते हैं, और हवा, चांद आदि पदार्थ जो कुछ हों पर उनसे जो लाभ होताहै सो तो जाना बूझा है"। पर, वाह ! तब हम अपने श्रद्धास्पद और विश्वासपात्र आचार्योंके उपदेशानुसार क्यों न चलें ? और हम जिस मूर्तिपूजनसे हृदय की शान्ति और अपूर्व आनन्दका स्वयं अनुभव करते हैं उसे क्यों न करें ? [जयध्वनि]

[ठ] यदि यह कहिये कि परमात्मा छोटा भी है और बड़ा भी और साकार भी है और निराकार भी, यह तो असम्भवसा जान पड़ता है इस लिये क्यों कर माना जाय ? ।

यह ठीक है असम्भवसा जानपड़ताहै पर सचमुच असम्भव है यह कौन कह सक्ता है ? देखिये जब-तक तारमें खबर देना नहीं निकला था तबतक यह असम्भव समझा जाता था पर अब असम्भव नहीं है वैसे न जानने में असम्भवता भासित होती है पर जानलेनेके अनन्तर असम्भवता की गन्ध भी नहीं रहती वैसेही हमलोग जीव हैं इसलिये अल्पज्ञ हैं उस महापुरुषको सम्पूर्ण रूपसे नहीं जानसक्के इस-लिये उसके गुणोंमें कुछ असम्भवतासी जान पड़ती है परन्तु हम आचार्योंके निर्देशानुसार और अपने विश्वासानुसार चलते हैं।

[ड] और भला एक बात तो कहिये क्या जो असम्भव जान पड़े उसे नहीं ही मानते हो ? आश्चर्य है ! हम तो तुम्हारे आज कालके प्रचलित शास्त्रोंमें से ऐसा कोई नहीं पाते हैं जिसमें कोई ऐसी बात न मानली गई हो जो मनमें न आसके और जो असम्भव सी जान पड़े।

(१) अच्छा पहले बाह्य विद्या Physics ही पर दृष्टि दो जिसके प्रभावसे कहीं धकाधक रेल चलरही है और कहीं भकाभक धुवांकस उड़ रही है। जिस विद्या से आधी मिनट में साङ्गोपाङ्ग तसवीर उतरती है और जिस विद्यासे अग्नि वायु जल भी दासानुदास का काम देते हैं उस विद्या की जड़ देखिये तो वह परमाणुवाद पर स्थिर है। कहिये तो परमाणु क्या आज तक किसी ने देखा है ? जिसे कहते हैं कि परमाणु एक ऐसी चीज है जो सबसे छोटा और जिससे छोटा न हो सकै क्या कोई कैंची से काटता वहां तक पहुंचा है और फिर जब आगे न कट सका तो उसका नाम परमाणु रक्खा है ?

युक्तियों से तो ऐसे पदार्थ का होना ही असम्भव जान पड़ता है जो सबसे छोटा हो और जिससे छोटा न हो सकै।

देखिये, अनुभव कीजिये तो एक जल बिन्दुमें कितने परमाणु होंगे ? मान लीजिये हजार दो हजार या लाख। अब होमियोपैथी की औषधियां देखिये तो वे आधसेर जल की शीशी में एक बूँद औषध मिलाते हैं फिर उस शीशी को हिला उसकी एक

बूंद दूसरी आधसेर जल वाली शीशीमें डालते हैं, उसे भी झकझोर तीसरी चौथी में यों करते करते पन्द्रहवीं या बीसवीं शीशी तक पहुंचते हैं तो भी उसकी एक एक बिन्दुमें क्या जाने कितने परिमाणु से वह औषधि रहती है कि इसका फल देख पड़ता है। एक रत्ती भर सोने का रङ्ग भी महीन तार पर चढ़ाके तार लम्बा करदें तो वह १ रत्ती सोना कोसों की भूमिमें फैल जाता है।

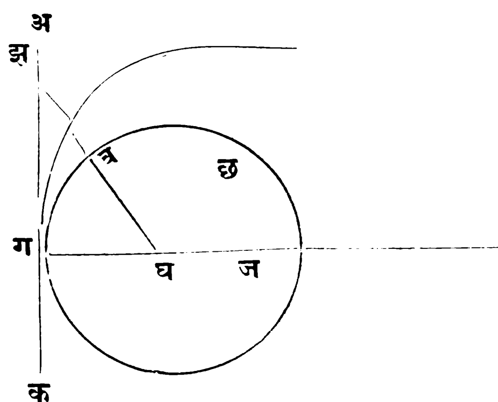
यदि कहिये कि 'यह नहीं' हम तो कहते हैं कि इससे भी कहीं सूक्ष्मावस्था परमाणु की है तो कहिये गणित से बढ़के तो कोई प्रमाण नहीं है? रेखागणित से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि किसी पदार्थकी ऐसी कोई भी अवस्था नहीं हो सक्ती जिससे और छोटी एक दशा न हो सकै॥

एक [अ क] रेखा के [ग] बिन्दुसे एक [ग घ] लम्ब उठाइये।

और इसको [घ] की ओर अनन्त दूरता तक घिंची मानिये फिर [घ] को केन्द्र मान [घ ग] व्यासार्द्ध से [ग च छ] वृत्त बनाइये [अ क] रेखा के [अ ग] खण्डमें कहीं एक [झ] बिन्दु मानकर

[झ घ] रेखा कर दीजिये । यह रेखा वृत्त की परिधि को जहां काटे वहां ही [च] बिन्दु मान लीजिये ।

अब [ग घ] रेखा के बढे हुए भागमें एक [ज] बिन्दु मान कर [ज ग) व्यासार्द्ध से एक और वृत्त करैं तो उसकी भी परिधि अवश्यही इस [घ झ]



रेखाके [च झ] खण्ड को काटती जाय गी [क्यों कि दो वृत्त भी एकही बिन्दु पर स्पर्श करते हैं तथा परिधि और सरल रेखा भी एकही बिन्दु पर स्पर्श करती हैं] तो [अक] रेखा और पहले वृत्त की परिधि के बीच ही बीच इसको जाना पड़ा जहां यह [च झ] बिन्दु को काटै वहांभी [च] विन्दु मानो।

अब देखो कि पहले वाले [च झ] खण्ड से यह [च झ] छोटा हो गया।

यदि योंही [ज] विन्दु को खसकाते जांय और [च ग] व्यासार्द्ध से वृत्त बनाते जांय तो वे सब इस रेखा खण्ड को काटते २ छोटा करते चले जाँयगे।

पर यह कहिये कि यह खण्ड छोटा होते होते ऐसा छोटा कब होगा जिससे छोटा फिर न हो सके ?

[ग घ] रेखा अनन्त दूरी तक समझी गई है उधर कभी हो ही नहीं सक्ता कि [ज] विन्दु को स्थान न मिले। और इधर [अ क] रेखा स्पर्श रेखा है इसलिये इसको भी कोई परिधि काटभी नहीं सक्ती और दबा भी नहीं सक्ती और अन्ततः—स्पर्श वाली-परिधि को भी न काटसक्ती न दबा सक्ती है तो उसको इसी छोटेसे [च झ] टुकड़े को काटते जाना होगा और यह कितना ही छोटा क्यों न हो जाय पर [ज] बिन्दु खसका के वृत्त करनेसे इसके और भी टुकड़े हो ही सकेंगे।

जो रेखागणित समझते होगे उनको इस उदाहरण से स्पष्ट प्रगट होगा कि कैसाही छोटे से छोटा पदार्थ क्यों न हो पर उससे भी छोटा पदार्थ होसक्ताहै।

तब कहिये गणितसे जिस पदार्थ की सत्ता के विरुद्ध सिद्धान्त हो उसको स्वीकार करना क्या असम्भव पदार्थ का स्वीकार करना नहीं है ? [जयध्वनि]

हम परमाणुवाद को और भी सैकड़ों युक्तियोंसे खण्डन करसकते हैं पर प्रायः हमारे श्रोताओं में स्कूल और कालिजके पढ़े विद्वानोंहीं का समूह देख पड़ता है सो उनके समझाने के लिये हम एक यही उदाहरणं पर्य्याप्त समझते हैं ।

इसी को व्यक्तसे देख लीजिये १ संख्यामें २ आदि संख्याओं से बढ़ा बढ़ा बढ़ा कर भाग देते चले जाओ तो वह परिमाण छोटा होता चला जायगा पर क्या कभी यह शून्य परिमाणभी होसक्ता है ?
[१ १ १ १ आदि] कदापि नहीं । हाँ वह
—, —, —, ——
२ ३ ४ २९९९९

छोटे से छोटा और उससे भी छोटा होगा और होता ही चला जायगा पर समाप्त न होगा यदि कहो कि शून्यसे भाग देने में शून्य हो जायगा तो इससे बढ़के अज्ञता कोई नहीं है क्योंकि भाग देने का अर्थ यह है कि किसी संख्या को जहांतक घटसके तहां तक घटाना तो शून्यसे भाग देना भी बेर बेर शून्य घटाना हुआ जिससे १ के परिमाणमें कुछ भी कमी नहीं होती तो यह कब सम्भव है कि [१÷०] एक में

शून्य से भाग देने में १ किसी समय एकाएकी समाप्त होजाय।

कोई हठी कहते हैं कि हम अनन्त संख्या से भाग देंगे तो [१+...] एक चटपद शून्य हो जायगा। पर देखिये बडी बड़ी संख्या से भाग देनेसे एक का परिमाण कम होता गया था सो अनन्त बडी सँख्यासे भाग दीजियेगा तो अनन्त छोटा परिमाण होजायगा पर समाप्त नहीं होगा इस युक्ति से भी कोई परम अणु परिमाण नहीं सिद्ध होता तो क्या उसका मानना असम्भव का स्वीकार करना नहीं है ?

दूसरी बात प्रकृतिविद्या में यह स्वीकार है कि प्रत्येक पदार्थ परस्पर में एक दूसरे को खींचते भी हैं और धकेलते भी हैं। कहिये यह कहांतक जीमें जमसक्ता है ? आप किसी को साथही घींचिये धकेलिये तो ? इससे यह तात्पर्य नहीं है कि भिन्न भिन्न समयमें घींचिये और धकेलिये तथा यह तात्पर्य भी नहीं है कि एक अवयवसे घींचिये और दूसरेसे धकेलिये परन्तु, एकही अवयवसे एकही क्षणमें आकर्षण और तिरस्कार दो परस्पर विरुद्ध काम होने चाहिये यह असम्भव बाह्यविद्यामें क्यों स्वीकार किया गया?

[२] अब रेखागणितके सिद्धान्त जानने वाले त्रिकोणमिति वालोंकी ओर ध्यान दीजिये जो कहते हैं कि समानान्तर रेखा भी कहीं मिलजातीहैं। क्या इसे आप असम्भव को स्वीकार नहीं कहते हैं ?

देखिये जिसी रेखागणित के सिद्धान्तों पर यह स्थिर है उसी रेखागणितसे इसकी असम्भवता सिद्ध होती है।

[२] समानान्तररेखा का यह लक्षण है कि "जो
१
सूधी रेखायें एकही धरातलमें हों और कितनी भी बढाई जांय पर कभी न मिलैं वे समानान्तर कहलाती हैं"। पर आप कहते हैं कि ये समानान्तर भी हैं और बढ़ानेसे मिल भी जांयगी। इसलिये यह असम्भव है।

[२] दो समानान्तर एक ओर बढ़ानेसे मिलेंगी
२
तो दूसरी ओर भी बढ़ानेसे मिलजायंगी तो यह मानना होगा कि दो सरल रेखाओंसे भी क्षेत्र बनता है पर रेखागणितका यह सिद्धान्त है कि दो सरल रेखाओंसे क्षेत्र नहीं होता।

[२] यदि दो समानान्तर रेखाओंमें एक पर
३
लम्ब उठाके दूसरीतक भिड़ादें तो वह उस पर भी लम्ब होगी, अब समानान्तर रेखा भी बढ़ाके मिली समझनेसे यह एक त्रिकोण हुआ जिसकी दो भुजा दो समानान्तर रेखा हैं और एक लम्ब है। पर इस त्रिकोणमें दो समकोणोंसे अधिक कोण हुए यह असम्भव है (१।३२।)

[२ [यदि कहिये कि दो समानान्तर मिलैंगी पर
४
आपसमें कोण नहीं उत्पन्न करैंगी ऐसा हो तो अवश्य ही दोनों मिलकर एक रेखा होजांयगी तो दो समानान्तर की एक रेखा और एक पहले कहा लम्ब इन दो सरल रेखाओंसे भी क्षेत्र बनैगा यह असम्भव है।

इत्यादि सैकड़ों रीतिसे यह बात असम्भव है पर क्या आश्चर्य है कि उन्हीं कालिजके छोकड़ों की छाती इस महा असम्भव को स्वीकार करते तो नहीं फटती परन्तु जगदीश्वर सर्वशक्तिमान्, महामहिम परमात्माकी गुणव्याख्यासे कोई असम्भव सी बात जान पड़े तो छातीके टुकड़े टुकड़े होने लगते हैं !

[३] अब अङ्क गणित की ओर देखिये ! यद्यपि इस विषयमें संस्कृत के गणक लोग तो बड़ी युक्ति से पार भी होजाते हैं पर आज कालके नवीन गणितज्ञ लोग तो नये नयेही पथ धरते हैं। यदि पूछा जाय कि १ में, ० से भाग दें तो क्या लब्धि हो तो संस्कृत वाले तो प्रायः कहते हैं खहर (१) राशि ही लब्धिमें आवैगी, और यदि इसके विषयमें और पूछ पाछ किया जाय तो अनिर्वाच्य वादके समीप पहुंचते हैं। परन्तु नवीन गणितज्ञ लोग कहते हैं कि किसी राशिमें जब भाग दिया जाता है तो भाजक ज्यों ज्यों छोटा हो त्यों त्यों लब्धि बड़ी होती जाती है जैसे १००÷५०=२, १००÷२५=४, १००÷१०=१०, १००÷२०=५,१००÷१=१००, १००÷$\frac{१}{२}$=२००, इत्यादि इत्यादि, इत्यादि) इसी रीति से भाजक को छोटा करते करते सबसे छोटा अर्थात् शून्य बनादें तो लब्ध सबसे बड़ा अर्थात् अनन्त राशि (Infinity) होगा अर्थात् इनका उत्तर है कि १ ÷०=........ होता है (बङ्ग देशके दो तीन नवीन गणकों की यह भी सम्मति मिली है कि १÷०=० जो कुछ हो)

अब देखिये भाज्य १, २, ३, ४ जो कुछ हो पर भाजक और लब्धि (divisor + quotient) का गुणन फल

भाज्य के तुल्य होता है इस कारण ० × ......=१ कहना होगा। और ० ×......= २ भी कहना होगा और फिर १=२ भी कहना ही पड़ैगा जो कि परम असम्भव है ! !!

बडे गम्भीर गणक लोग इसका यों उत्तर देते हैं कि सब शून्य परस्पर तुल्य नहीं हैं और सब अनन्तताभी परस्पर तुल्य नहीं है इस कारण पहले वाला समकिरण ठीक नहीं है और असम्भव नहीं होगा पर क्या बात है ? यह तो वही बात भई कि "गुड़ खाय गुलगुले का परहेज" शून्य का अर्थ है "कुछ नहीं" पर अब कुछ नहीं कुछ नहीं भी लाखों प्रकार का माना और अनन्तताभी करोड़ों प्रकार की मानी जाय तो यह किस असम्भव बात से कम है ? पर क्या आश्चर्य है कि हमारे अंगरेजिहा लोगों को यह सब तो चट समझ में आजाता है पर भगवान् की उपासनाके समय सहस्रों शङ्का आपड़ती हैं ! ! (जयध्वनि)

अब हम इस का बहुत विस्तर करना उचित नहीं समझते आप लोग ऐसे ही बीज गणित में भी समझ लीजिये कि अतुल्य संख्याओं में सर्वाधिक संख्या जोड़ देने से अथवा अन्तरादि करनेसे जो तुल्य फल

मानते हैं उनके मतमें भी अतुल्य संख्या परस्पर तुल्य होने लगती हैं कि नहीं? और आप लोग इस आश्चर्य को भी देखिये कि पहाड़ ऐसे वज्र असम्भवोंको तो लोग निगल जाते हैं और ईश्वर विषयक कोई सी बात समझमें न आवे तो उनके पेटमें खिचरी सीझने लगती है। (विशेष करतलध्वनि, जयध्वनि और पुष्पवृष्टि)

(ढ) यदि कोई यह सब सुन समझ के भी अपने निघरघट्टपने से कहै कि "जो कुछ हो उस सर्वव्यापक की आकार कल्पना तो हमारे जी में नहीं जमती" तो ऐसे पाषाण हृदय को समझाने की तो कोई आवश्यकता नहीं है पर हम कई बार आप लोगों के सामने अपना तात्पर्य प्रगट कर चुके हैं कि दूसरे मतवालों को समझा बुझा भरमा अपने मतमें लाना तो हम महापाप समझते हैं क्योंकि यह सनातन धर्मकी उदारता के बाहर है पर हां जो हमारे ही यहां के बच्चे दुःसङ्गमें पड़ बिगड़ते जाते हैं उन्हें बच्चा, भैया, बाबू, छन्नू, मुन्नू, कह समझाना और सन्देह मिटाना हमारा उद्देश्य है ! जिस लड़के का नाम पुत्र अर्थात् पूर्व पुरुषों का नरकसे उद्धार करने वाला है और जिसे

देखते ही मा बाप आनन्दमें डूब जाते हैं कि यह बच्चा हम जीयेंगे तब तक सेवा कर सुख देगा और मरने के बाद, श्राद्ध तर्पण कर परलोक का सुख देगा, उसी लड़के को बाप दादोंको मूर्ख बताते और श्राद्ध तर्पण के विरुद्ध झण्डा गाड़ते तथा अपने इष्ट देव राम कृष्ण तककी निन्दासे मुख दुर्गन्धित करते देख जले हृदय से रोते और आंसू बहाते बूढ़े उनके मा बापों को देख हम लोगों से रहा नहीं जाता और फिर द्रव्य नष्ट करके भी परिश्रम उठाके भी शरीर को कुछ न गिनके भी जहां तक उनकी शङ्का मिटाई जासके वहां तक यत्न करना ही पड़ता है और इसलिये एक बेर और यत्न करता हूं। पतङ्ग को स्वयं आगमें गिरते देख हम लोग तो बहुत यत्न करते हैं कि वह आग में न गिरै पर फिर भी घूम फिर जान दे तो हमारा क्या दोष? हमारी उन लोगों से यही प्रार्थना है कि छल कपट छोड़ कर सुनैं फिर सचमुच सन्देह मिटजाय और हमारी बातैं जीमें धसैं तो मानैं नहीं तो जो मान बैठे हैं उसी चरखे में पड़ मन मानी फुलझड़ी छोडैं। उन लोगों की चटकीली भड़कीली समझ और विद्या है कि कुरान हाथ में ली तो इसलाम को सलाम करने लगे और

बाइबल् हाथमें लीतो ईसामसीह की तारीफमें अपनी फ़सीह जबान करकराने लगे, भामोंके भरममें पड़े तो भर्म भर्म भोंभाने लगे और अनार्य्या आर्य्याओंके बखेड़ेमें पड़े तो अपना धैर्य छोड़ आचार्योंको गाली देने लगे, पर बाबा यहाँ तो "सूर स्याम की काली कमरिया चढ़े न दूजो रंग"

अच्छा हम बहुत आगे बढ़गये अब फिर वहां ही आइये कहिये कै प्रकारके पदार्थोंकी आकार कल्पना नहीं हो सक्ती ? हम तो समझते हैं कि आप लोग बहुत ही बहुत सोचैंगे तो पांच प्रकारके पदार्थ निकालैंगे । सुन लीजिये और जांच लीजिये देखिये यही न कहैंगे कि "(१) एक तो अनन्त [सर्वव्यापक] पदार्थका आकार नहीं माना जा सक्ता (२) दूसरे अतिसूक्ष्म परमाणु स्वरूप का आकार नहीं हो सक्ता (३) तीसरे जिसका तत्त्व ही नहीं जानते उस अज्ञात पदार्थका आकार नहीं हो सक्ता (४) चौथे जिसके विषयमें निश्चय है कि इसमें आकार नहीं उसका भी आकार नहीं हो सक्ता (५) पांचयें जो पदार्थ ही कुछ नहीं है उस शून्य स्वरूप का आकार क्या होगा । नहीं हो सक्ता " कहिये इसके

सिवा और भी कुछ है जिसका आकार प्रश्न कर्ता की समझमें नहीं हो सक्ता ? (नहीं नहीं बहुत ठीक हुआ.)

अच्छा अब मेरी ओरसे सुनिये, मैं कहताहूं कि जब आकार कल्पना ही ठहरी तो इन पांचों प्रकारके पदार्थों की आकार कल्पना हो सक्ती है क्रमसे सुनिये,–

---

(१) पहले यह कहा है कि, अनन्त पदार्थका आकार नहीं माना जासक्ता। हां ठीक ही है मोटी मोटी दृष्टिमें सभी समझ सक्ते हैं कि आकार जब होगा तब अवच्छिन्न का होगा और सर्वव्यापक जब निरवच्छिन्न हुए तो उनका आकार क्या ? पर गम्भीर भावसे देखिये तो पहले गणित ही की ओर विचार कीजिये और किसी बड़े कालिजमें बड़े प्रोफेसर का कृत्य देखिये कि दो हाथके काले तख्ते पर रेखा खींच कर कहते हैं कि "(A B is a straight lien drown in both sides up to in finity) अ–ब एक रेखा है जो (दोनों सिरे की ओर इतनी दूर तक घींची गई है कि इसका कुछ अन्त नहीं" कहिये तो इस अनन्तका आकार कैसे हुआ और परम आश्चर्य तो यह है कि रेखा तो ऐसी लम्बी है कि करोड़ों कोस पर भी उसका अन्त नहीं और अमागई दो हाथके board) तख्ते पर !

और अङ्कगणितमें कोई पूछे कि किसी संख्यामें शून्यसे भाग दें तो क्या लब्धि हो तो हमारे नव युवक चटपट एक पुरजेमें (१ ÷०=......) संख्याके अनन्तर भोगाचिह्न देके शून्य लिख तुल्यता का चिह्न दे पांच सात बिन्दु बिन्दु देकर कहेंगे कि यह देखिये यह (infintiy) अनन्तराशि लब्धिमें आई !

कहिये तो अनन्त राशिको लिख कैसे डाला क्या अनन्त राशि भी बकपंक्ति की भांति उड़ती हुई किसी ने देखी ? पर आकार कल्पना उसकी भी की गई पर जिसकी आकार कल्पनासे उपासना हो सकै और मनुष्य संसार समुद्रसे पार हो सकै उसकी आकार कल्पना देख लोगों की नानी मरती है !! .

---

(२) अब क्या कहतेहैं कि अति सूक्ष्मका आकार नहीं हो सक्ता?हां ठीकही है मोटी समझमें सब कोई एक बेर यही सोच सक्ते हैं कि न जिसमें लम्बाई न चौडाई और जिसका किसी प्रकार देख पडना तक असम्भव नहीं उसका आकार क्या बना सक्ते हैं और उसकी तसवी-रही क्या लिख सकते हैं । पर प्यारे ऐसा ही है तब तो जब कालिज में बीए वा एम् ए क्लास में पढने

बैठे तो यह तो एन्ट्रेन्स स्कूलके ४ क्लाससे घोखते आते हैं कि बिन्दु वह पदार्थ है जिसमें न चौडाई न लम्बाई और रेखा वह है जिसमें लम्बाई तो है पर चौडाई नहीं इसे बेर बेर याद धराना आवश्यक नहीं। अच्छा अब बडी लम्बी चौडी प्रशंसा वाले (critic) प्रोफेसर साहबने एक बोर्डपर मोटी खली हाथमें ले एक खूब चौडी रेखा और एक पूरी ऐसी गोल बिन्दु बनाकर कहा कि (You see, A B is the given line and C the given point.) देखते हो 'अब' एक दी हुई रेखा है और 'स' एक ठो दिई हुई बिन्दु है" । हम तो समझते हैं कि हमारे प्रश्नकर्त्ता ऐसे बुद्धि के अजीर्ण वाले नवीन बुद्धि वाले किसी महामहोपाध्याय को चट पट उठके खडे होजाना चाहिये और कहना चाहिये कि "वाह जो बिन्दु ऐसा छोटा होता है कि जिसमें न चौडाई न लम्बाई वह क्या यही चार इञ्च के घेरे का श्वेत चक्कर बिन्दु है और क्या यही हाथी के पैर ऐसी मोटी चौडी पगडी ऐसी श्वेत सडक रेखा है? यदि वे कहैं कि "नहीं बाबा यह तो खली की मोटाई के कारण रेखा मोटी हुई है इसे वही बे चौडाई की रेखा मान-लो।" तब तो वे भी धडाके से कह उठैंगे कि नहीं,

माननें वाननें की कुछ बात नहीं, ठीक रेखा खींचिये। और जब (Respected sir,) मान्य महाशय कहें कि बाबू रेखा और बिन्दु का जैसा लक्षण है ठीक वैसाही बनाना मनुष्य का साध्य नहीं। यदि उसी का हठ करना है तब तो बैठे रहो पढने लिखने की आवश्यकता नहीं जैसे के तैसेही रहो और यदि मान मान के आगे बढते जाओगे तो इतने गणितों का जो फल है त्रिकोण मिति सो समझ सकोगे और उसका भी फल ग्रहों की दूरता आदि का ज्ञान है सो पा सकोगे और अपनी ही टिर्र में गोवारिया गनेस बने बैठे रहोगे रेखाही न खींचने दोगे बिन्दु ही न बनाने दोगे तो जैसे के तैसे घोंघा रह जाओगे ज्ञान से सम्बन्ध न होगा।

बस इसके सदृश इधरसे भी उन्हें समझ लेना चाहिये कि उस "अणोरणीयान्" महाप्रभुका यथार्थ आकार हम लोग न भी बनासकें तो चिन्ता क्या पर इस हठ पर जो छोड बैठैंगे तो ज्यों के त्यों निरे झंझटी बने बैठे रहजाँयगे और वही जन्म मरण वही आवागमन उनके सङ्ग लगा है और जो कुछ भी कल्पना करके उसपर उपासना का अभ्यास करते चले

जांयगे उन्हें अवश्यही एक दिन भगवत्प्राप्ति होगी ॥

(३) अब क्या कहते हैं कि अज्ञात पदार्थ की आकारकल्पना नहीं हो सक्ती ? वाह वा वाह ! तब तो बीजगणित एकाएकी धूल में मिल गया । वहां तो अज्ञात पदार्थ माना भी जाता है कागदपर लिखा भी जाता है । उसमें योग वियोग गुणन, भाग, आदि क्रिया भी करी जाती हैं और फिर धीरे धीरे अज्ञात से ज्ञातभी होजाता है । प्रियवर ! क्यों बहुत बकवाना चाहते हो वह जो कुछ "मनसो वचसोऽप्यगोचरः" हो पर उसको कुछ यावत् तावत् कालक पीतक मानकर उस पर उपासना का गणित करते चले जाओ तो एक न एक समय पा ही लोगे ॥ (जयध्वनि)

(४) अब चौथी बात कहने को आपके ओठ फरफरा रहे हैं और वह यह है कि जिसका निश्चय हो चुका है कि यह निराकार है इसका आकार नहीं माना जासक्ता ।

यद्यपि परमात्मा के विषयमें ऐसा भारी निश्चय नहीं बतलासक्के तो भी हमें तो आपकी युक्ति की समालोचना करनीहै। सुनिये शब्द रूप रहित है यह सबका सिद्धान्त है और नीरूप हुआ तो निराकार हुआ यह निश्चयहै ।

अब आप कहिये तो कहीं पेडोंमें लटकते या आकाशमें उड़ते क ख ग घ आपने देखे हैं ? कहीं लतरसे लहराते अलिफ़ बे पे ते और कहीं जलमें बुड़की खाते ए बी सी डी का पता लगा है ? क्या कहीं जालोंमें कीड़े मकोड़ोंके सङ्ग अल्फा वेत्ता जी नजर आये हैं ? अथवा क्या बोलनेके समय दांतमें उनके टेढे मेढे आकार खटक उठते हैं? अथवा क्या बोलते बोलते मुँहसे काली काली धारा निकलने लगती है ? (करतलध्वनि) कहीं कुछ नहीं । पर क्या आश्चर्य है कि आप लोगोंको लज्जा नहीं कि उन्नीसवें शतकके हुज्जती विद्वान् होके भी आप लोग चट कागद पर काला काला आकार बना कहते है कि यह 'क' है यह 'ख' है !!

विचारे सन्थाली जङ्गली लोग आप लोगोंसे लाख दरजे अच्छे हैं कि उनने अभी तक अक्षरावली बनानेसे निराकार की आकार कल्पना कह अपने हृदयको कलङ्कित नहीं किया ?

और यदि यह कहिये कि यदि शब्दोंके भिन्न २ आकार न मानें तब तो एक का अभिप्राय दूरदेशवासी और उत्तरकालीन पुरुष कैसे समझेगा ? और जब हम लोगोंके ग्रन्थादिही न बनाये जावें तब हम लोगोंको

वाक् शक्ति होनेंहीका क्या फल हुआ ? इतना वे न समझ सके इसी लिये वे जङ्गली हैं।

क्षमा कीजिये तब हम भी कहेंगे कि जब परमात्मा का एक एक आकार न मानलें तब उपासना कैसे करेंगे भक्तिका उद्रेक कैसे होगा। और आपकी तो वाक् शक्ति ही व्यर्थ होतीथी यहां तो मनुष्यजन्मही व्यर्थ हुआ जाता है !!! और आप इतना भी नहीं समझते तो हम आपही की युक्तियोंसे आपको महा जङ्गली क्यों न कहें।

(५) आपकी पांचईं कोटि यह है कि जो पदार्थ ही कुछ नहीं है एकाएकी शून्य है उसका आकार क्या होगा। बस हमें इस विषयमें विशेष नहीं कहना है। मानिये कि आपकी थैलीमें पांच रुपये हैं और आपने एक दिन दो खर्च कर डाले और एक दिन तीन खर्च कर डाले। सच कहिये अब फिर उस थैलीमें हाथ डालिये तो कुछ हाथ लगेगा ? (नहीं नहीं कुछ-नहीं) समझके कहिये टटोलनेसे कुछ हाथमें खटकेगा? (नहीं नहीं) देखिये कुछ गोल गोल अण्डे ऐसा (करतलध्वनि.)

पर आप अपने L.L.D. विद्वानोंसे पूछिये कि पांचमें २×३ दो औ तीन घटादे तो क्या बचै तो वे चट एक

(५-(२+३)=०) गोल अण्डे ऐसा लिख कहेंगे कि देखिये यही बचा ।

कहिये आपका शून्य तो गोल हो सक्ता है और परमात्मा शालग्राम और नर्मदेश्वरके आकारके नहीं हो सक्ते ?

इससे अनेक खण्डन मण्डन पूर्वक यह स्पष्ट फलित हुआ कि पहले तो जैसा तुम समझे हो वैसा वह निराकार नहीं है और फिर आकार कल्पनामें कोई बाधक भी नहीं है और निराकार प्रभृति पदार्थों की आकारकल्पना तुम भी करतेही आते हो । तो जब सभी पदार्थोंका प्रतिनिधि स्वरूप आकार मान सक्ते हैं तो जिसके माननेसे उपासना कर हम मोक्षपद तक पहुँचनेका विश्वास रखते हैं उसका क्यों न स्वीकार करेंगे (जयध्वनि.)

अब तीसरा प्रश्न यह है कि,

(३) "व्यापकता समझ मूर्त्ति पूजा की जाय तो किसी प्रधानही पदार्थकी पूजा क्यों होती है !"

इस प्रश्न का तात्पर्य्य समझे ? यह तो एक सभ्यता के आकारसे रक्खा है पर जो इन दिनों उत्तमकुलके छोकडे ऐसा प्रश्न करते हैं वे तो कहते हैं कि

यदि ईश्वर सभी जगह है तो शालग्राम नर्मदेश्वर और रामकृष्णादि प्रतिमा ही में क्यों उपासना की जाती है। घोडे गधे आदि सभी स्थानोंमें पूजा क्यों नहीं करते। हम किसी निकृष्ट स्थानमें बतावें तो वहां ही पूजन क्यों नहीं करते ?"

अब आप लोगों को स्पष्ट विदित हुआ होगा कि प्रश्न कर्त्ताओंने एक तो यह समझ रखाहै कि (क) हम केवल व्यापकता ही के कारण मूर्त्तिपूजा करते हैं। दूसरे यह भी उनने समझा है कि (ख) प्रधान मूर्त्ति छाँड दूसरे स्थानमें हम पूजा नहीं करते हैं और तीसरे यह भी उनकी गमक निकलती है कि (ग) मानों वे तो व्यापकको व्याप्यके अंशमें पूजा उपसाना कभी करतेही नहीं हैं।

अब आप लोग क्रमसे इसकी समालोचना कीजिये तो सहजमें समझ जाइयेगा कि पूछने वालेकी धूर्त्तताके अजीर्ण की मूर्च्छा पर का प्रलापमात्र है यह कोई प्रश्न नहीं है।

(क) कहिये तो किसने कब कहा कि परमात्मा व्यापक है केवल इसीलिये हम मूर्त्तिपूजा करते हैं ! परन्तु जिसमें चित्त स्थिर हो, भगवन्मय हो, शान्ति

लाभ हो, शीघ्र भगवत्प्राप्ति हो इत्यादि और भी तो अनेक कारण हैं जिनसे हमें मूर्त्तिपूजन आवश्यक है और वह अधिकारियों के भेद और आचार्यों की परिपाटी से अवश्यही ऐसी स्थिर होती है कि, किसी प्रधान रूप रङ्ग और आकार तथा ढङ्ग पर प्रधान बल दिया जाय इसका कुछ विशेष तत्त्व आप लोगों को छठे प्रश्नके उत्तरमें विदित होगा । यहां इतनाही समझ लीजिये कि, व्यापकता मात्र हम लोगों की मूर्त्तिपूजाका कारण नहीं है । प्रत्युत यह कहना उचित है कि व्यापकता मूर्त्तिपूजामें कारण है ही नहीं, क्योंकि हम लोग तो इन्द्रादि देवों की, नन्दयशोदा की वसुदेव देवकी की, और हिमालय विन्ध्याचल तककी मूर्त्ति बनाते हैं और श्राद्धमें कुशरूपमें पितरों को तथा पुत्तलमें यः कश्चित्तक की मूर्त्ति कल्पना करते हैं और वहां व्यापकता की वासना भी नहीं रखते ।

(ख) दूसरी मनमानी भावना उन लोगों की यह है कि हम लोग एक मूर्त्ति छोड दूसरेकी पूजा करते ही नहीं हैं । वाह वा वाह! तुम लोगों के मस्तिष्कके आगे वज्र भी झखमारे ? अरे ! तुम लोग एक दिन दस पन्द्रह सहयोगी खडे होकर गिन मिन

कर लो सोतो सर्वव्यापक की पूजा हो गई और उपासना होगई और हम लोग उपासना का शास्त्र लेकर नारद शाण्डिल्यादि परमाचार्य्य परम्पराके अनुयायी होकर उपासना करैं सो कुछ नहीं ? हम किसकी पूजा नहीं करते ? हमारी पूजा परिपाटीसे क्या बजाता है ? सूर्य चन्द्रादि ग्रह तथा तारों की पूजा हम करते हैं, वायु जल अग्नि आदि तत्त्वों की पूजा हम करते हैं, नदी तड़ाग समुद्र कूपादि जलाशयों की पूजा हम करते हैं, हिम विन्ध्य गोवर्द्धन चित्रकूटादि पर्वतोंकी पूजा हम करते हैं, गौ बैल हाथी घोडे आदि पशुओं की पूजा हम करते हैं, वट पिप्पल कदम्ब तुलसी आदि वृक्षों की पूजा हम करते हैं, और सर्पादि सरीसृपों की पूजा हम करते हैं, शैय्यादान के प्रकरणमें पलंग तोषक छडी छत्ते तककी पूजा होती है, राज्याभिषेकमें सिंहासन छत्र चामर खड्गादि की पूजा होती है, वास्तुप्रकरण में घरों की पूजा होती है, दावात पूजा भारतवर्षमें प्रसिद्ध है। जिस दिन मसीपात्र लेखनी बही आदिकी पूजा होती है, और क्या पूछतेहैं अक्षत फेंक दशों दिशाकी पूजा हम करते हैं, तीनों लोक और चौदहों भुवनोंकी पूजा हम करते हैं।

और सब लौकिकालौकिक पदार्थोंमें जो एक अपूर्वशक्ति विद्यमान है उस भगवती शक्तिकी भी पूजा हम करते हैं। (यच्च किंचित् क्वचिद् वस्तु सदसद् वाऽखिलात्मिके। तस्य सर्वस्य या शक्तिः सात्वं किं स्तूयसे तदा)॥ अब कहिये क्या बचगया जिसकी हम पूजा न करतेहों? क्या कोई ऐसी चीज का नामलीजियेगा जो त्रिलोकके बाहर हो? (जय जय ध्वनि.)

हां यदि यह कहिये कि तब तो त्रिलोकमें हम भी हैं आइये आइये हमको इसमें क्या आपत्ति है हम तो आपको पञ्चोपचार नहीं षोडशोपचार पूजा करनेको तैयार हैं। हमारे तो अनन्य वीर वैष्णव गोस्वामी तुलसीदासजी भी कह गये हैं कि "पुनि वन्दों खल गन सतभाये बन्दों सन्त असज्जन चरना... मैं सेवक सचराचर रूपराशि भगवन्त ... सियाराममय सब जगजानी, करों प्रणाम जोरि जुग पानी" परन्तु सभ्यगण जिस मूर्त्तिके द्वारा हम भगवत्पूजन करैं उसके द्वारा कोई घृणा आदि कुभाव हमारे हृदयमें न उत्पन्न होना चाहिये। क्योंकि वह भाव हृदयमें रहनेसे प्रेम और भक्तिको कम स्थान मिलता है इस कारण हमारे इष्टके निन्दकको अथवा और कोई अपवित्र और मलिन

पदार्थों की पूजा हम नहीं करते और हमारे आचार्योंने जैसा विभाग कर दिया है उसी अनुसार चलते हैं।

(ग) अच्छा अब मूर्त्तिपूजाके घण्टानादसे जिनका सिर टनटना जाता है, मूर्त्तिपूजाका शङ्खनाद सुन जिनका सांस फूलजाता है और मूर्त्तिपूजाकी आरती देख जिनके कलेजेमें आग लग जाती है, उन्हींसे पूछते हैं कि आप लोग उस सर्वव्यापक सच्चिदानन्द की उपासना कैसे करते हैं? आपने जो हमसे प्रश्न किया उसका मूलसूत्र तो आपके जीमें यही है कि जो और पदार्थ बहुसम्बद्ध है उसको किसी एकके सम्बन्ध पर निर्भर करके उसकी उपासना करना उचित नहीं? इसी कारण जब सर्वव्यापक पदार्थ सबमें सम्बन्ध रखता है तो एकके द्वारा उसकी उपासन करना उचित नहीं। पर अब कुछ अपने मतमें देखिये कि जो सब मतोंमें गाया जाता है उसके लिये आप कोई प्रधान मन्त्र क्यों जपते हैं आप नास्तिक छोड किसी प्रकारके भी आस्तिक हों पर कलमा ही सही नमाजही सही सांझ सबेरेकी प्रार्थना ही सही कोरा सूखा माखा ब्रह्म ब्रह्म शब्द ही सही अथवा नये वैदिकोंके

दयानन्द रचित मन्त्रही सही अथवा प्रणवही सही पर एकही पर प्रधानता क्यों ? जो सब दिशामें हैं उनके लिये क्या आप रावण होकर सब ओर सङ्गही एक एक सिर झुकाते हैं ? जो सब धर्म पुस्तकोंका वर्णनीय है क्या आप उसके लिये सभी पुस्तक साथ पढते हैं अथवा एक ही हाथमें लेते हैं, ऐसा है तो क्यों ? जो सब भाषाओंमें गाया जाता है उसके लिये एक कोई खास भाषा क्यों ? क्रिश्चन, साहब, क्या गिर्जा ही उसके यहां जानेका द्वार है। आप तो कहते हैं कि (God is every wherc) मौलाना मुर्शिद साहब, क्या जूमामास्जिद का सिर विहिश्त से

---

१ "श्रीकृष्णः शरणम्मम" इस मन्त्रको मिथ्या संस्कृत बतलाते हैं पर अपने संध्योपासनमें निम्न लिखित तीन मन्त्रोंको देखकर आंखें बन्द करलेते हैं जो इन्हींके श्रीमुखसे निकले हैं ॥

"ओं सर्वजगदुत्पादकमन्तर्यामिणं सर्वप्रकाशकं सर्वानंदप्रदं सच्चिदानंदानंतस्वरूपनित्यशुद्धमुक्तस्वभावंजगदादिंसर्वशक्तिमन्तं न्यायकारिणमस्मदबुद्धिसद्गुणसत्वमसुप्रेरकं वयम्प्रार्थयामहे" ॥ १ ॥

"ओं परमेश्वराय सच्चिदानंदानन्तस्वरूपाय नित्यशुद्धमुक्तस्वभावाय कृपामृतसागराय सततं नमः " ॥ २ ॥

"ओं सर्वात्मानमन्तर्यामिणं कृपामृतसागरम्परमात्मानमहं शरणं प्रपद्ये" ॥३॥

सटा है ? हरिन से चञ्चल आर्य्यसमाजी छोकडो ! क्या तुम्हारी समाजशाला और यज्ञशालाके पड़ोसही में स्वर्ग है ? ब्रह्मसमाजियो ! क्या ब्रह्ममन्दिर छोड तुम्हारे ब्रह्म माशाई और जगह नहीं रहते । छी छी ॥ जब तुम्हें भी अन्तमें झखमारके यही कहना है कि वह सब भाषा सब ग्रन्थ, सब देश और सब स्थानों से संबन्ध रखता है पर जो जैसा अधिकारी है वह वैसा करता है और जीव सर्वव्यापक की उपासना जब करैगा तब किसी एकदेशी पदार्थ ही के द्वारा करैगा तो वह भले ही सब जगह हो पर हम किसी एक के द्वारा उसे उपासक्ते हैं तो प्यारे ! फिर हमसे दांत खटा खट क्यों करते हो ?

प्रियवर ! श्रोता लोग, आप लोगों के आगे इस निर्मूल युक्तिपर समय व्यतीत करना मैं व्यर्थ समझता हूं सो इस पर एक आर्यसमाजी को एक लड़के ने कभी एक उत्तर दिया था बस वही मैं आप को एक बेर कह सुनाता हूं इससे और भी प्रगट हो जायगा कि यह कैसे भद्देपन का भरा प्रश्न है । कहीं एक आर्यसमाजीने बड़े झोकझाकसे डाढी पर हाथ फेर, सिर झुमा, हाथ घुमा, कमर हिला, मुँहसे गिल-

गिला कर कहा कि "भला भला भला कक्कहिये तो जो जो जो सर्वव्यापक है आर्य उसे किसी खखास ही जगह क्यों पपूजते हैं। कहीं हम बतावें वहां हीं कक्यों नहीं फूल चन्दन चचचढाते।" तब उस लड़के ने कहा कि "ठीक है पर एक बात तो कहिये, आप लोग तो माता पिता का पूजन करते हैं और देव पूजा का अर्थ भी मा बाप का पूजन करनाही लगाते हैं और "मातृ देवो भव" आदि इसमें प्रमाण मानते हैं और मा बाप को चन्दन लगाना फूलों की माला पहिराना अतर लगाना, आदि ही उनका पूजन समझते हैं। भला हम पूछते हैं कि आप की मातामें जो आपका मातृत्व है सो कहां से कहां तक है। हाथमें, पांवमें, सिरमें, अथवा और कोई प्रधान अङ्गमें। अथवा कहिये कि नहीं नहीं नहीं माता के शरीरमें मातृत्वव्यास है किसी अङ्गमें कमढेर नहीं है"। तब समाजो साहब! खांस खूंस के बोले कि "हां साहब हां, माके, माके बदनमें ममातारित्व ससब जगह एकसा है" तब उस लडके ने कहा कि "पर देखते हैं कि आप माके सिरमें चन्दन लगाते हैं। अरे साहब जब मातृत्व उसके अङ्ग में सर्वव्यापक है तो सिरही में चन्दन क्यों लगाते हैं

जहां हम बतला दें वहीं चन्दन लगा दीजिये। आर्य-समाजी कुछ शर्म्मा नीचे मुँह झुका फिर लाज छोड़ कहने लगे कि "एँ वह सिर अत्युत्तम अङ्ग है इसलिये उसमें च चन्दन लगातेहैं ततनुम कोई अपवित्र जगह कहोगे ततता क्या वहां हीं लललगावेंगे।" लड़केने कहा महाराज! "फिर हम भी उस व्यापक को उत्तम पदार्थों में पूजते हैं अपवित्रों में नहीं।" तब आर्य-समाजीजी सिर खजुवा सत्यार्थप्रकाशाभास का पोथा बगलमें दबा "ककक्या वहस करोगे। क्या वहस करोगे। तब हम लोगों के नननियम देखो, उस ककलललवारके यहां हमारा डडेरा है, चचले आओ, हें हों हां"करते नौ दो ग्यारह हुए।

(करतल ध्वनि.)

फलित यह हुआ कि—

(क) न तो हम केवल व्यापक ही के कारण मूर्त्तिपूजा करते हैं प्रत्युत और भी कारण हैं, (ख) न हम एकही को पूजना स्वीकार करते हैं प्रत्युत अधिकार और अवसरके अनुसार नदी पर्वतादि सभी का पूजन करते हैं, और (ग) न तुम्हीं में यह सामर्थ्य है व्यापक की पूजाभी व्यापकही करें।

अब आपका चौथा प्रश्न है कि,—

"निराकार की उपासना ध्यानादिद्वारा हो सक्ती है तो मूर्ति पूजा क्यों" ?

इसप्रश्न पर तो हमें बहुत विस्तारकी आवश्यकता नहीं दीख पड़ती। इसके एक भाग पर तो द्वितीय प्रश्नका खण्डन मण्डन ही बहुत कुछ समझादेगा अब आप ही लोग विचारलें कि (क) उसकी उपासना ध्यानादि द्वारा हो सक्ती है कि नहीं ? (ख) हो भी सकै तो फिर मूर्त्तिपूजा उसमें सहायक है कि प्रतिबन्धक ? (ग) और जो भगवद्ध्यानमें डूब समाधिमें मस्त हैं और ब्रह्ममय हो गये हैं वे भी समाधि छोड़ मूर्त्तिपूजा करैं यह हम कहते कि नहीं ?

(क) पहले यही देखिये कि, उसकी उपासना ध्यानादि द्वारा हो सक्ती है कि, नहीं ? आप ही लोग शोचिये कि निर्गुण और निर्लेप तथा सर्वव्यापक पदार्थ ध्यानमें आसक्ता है कि नहीं ? जितने पदार्थ देखे अथवा सुने जाते हैं और जितने पदार्थोंसे हम लोगोंका परिचय है उन सबसे विलक्षण का ध्यान भी हम लोग कर सक्ते हैं कि नहीं ? (फिजिओलोजी) शारीरिक विद्यावाले तो स्पष्ट कहते हैं कि (ब्रेन्)

मस्तिष्कमें जितने भाग हैं उनमें किसीमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि निर्गुण निर्लेप का ध्यान करें। यह बात प्रत्यक्ष भी देख पड़ती है कि, जितने रङ्ग हम लोगोंके देखनेमें आते हैं और जितने सवाद चीखनेमें आते हैं उनसे विलक्षण का स्मरण और कल्पना भी हम लोगों की शक्तिके बाहर है। हम लोग गणित द्वारा जानते हैं कि, पृथ्वी गोल है, घूम रही है, समुद्र और महाद्वीपोंसे भरीहै २५००० (माइल्) क्रोशार्द्ध के घेरेमें है पर क्या आंख मीच इस भारी मण्डलका ध्यान भी कर सक्ते हैं? जब जब ध्यान करेंगे तो पृथ्वीका कोई एक भाग ध्यानमें पड़ेगा, अथवा बड़े उंचे पहाड़ परसे जितना भूमण्डल देख पड़ता है उसके लगदंग भासित होगा अथवा अतिदूर घूमता हुआ सूर्य चन्द्रादिसा गोला झलकेगा। पर यह जीमें भी नहीं आवेगा कि हमारी आँखोंकी शक्ति अलौकिक होगई है हम इस भूगोलको चारों ओरसे एक साथही देख रहे हैं, सब समुद्र और भूमण्डल साथही हम लोगोंकी दृष्टिमें पड़रहे हैं, वह वेगसे घूम रही है तो भी हम लोग सब नगर आदि की उत्तमशोभा देख

रहे हैं। कहिये तो हम लोगोंके सांसारिक स्वभावके विरुद्ध जब ये छोटी छोटी बातें भी जीमें नहीं आती तो सर्वथा अलौकिकका कैसे और क्या ध्यान हो सकैगा ? यदि उसको "यस्य भासा सर्वमिदं विभाति" यों प्रकाशमान प्रकाशका ध्यान कीजिये तो फिर उसमें शुक्लादि कोई रूप मानना पड़ा तो निर्गुणता न रही। भला आंख मीच देखिये और आपको शपथ है सच सच कहिये तो क्या देख पड़ा [१] आंखके आगे अँधेरा सा या धुआँसी तो अवश्यही आगई होगी पर और क्या देखा ? यदि कहिये कि उसी अन्धकारको ब्रह्मस्वरूप मान ध्यान करते हैं तब तो हमारे ऊपर क्यों चिढ़े ? हम भी तो किसी श्याम ही तेजमें डूबे जय श्रीकृष्ण कहते हैं। यदि कहिये कि नहीं नहीं हम तो भ्रुकुटि मध्यमें दृष्टि स्थिरकर एक विचित्र तेजोमण्डलमें जमजाते हैं। तो हम कहते हैं यदि यहीं तक हो तब तो कुछ भी नहीं पर योगमार्गसे वहां स्थिर होओ तो धीरे धीरे तारामण्डल, चन्द्रमण्डल, चन्द्रमण्डलमें

१ हमको दयानन्दजी की बातपर आश्चर्य होता है कि, उनने परमात्मा की मानसप्रदक्षिणालिखी है। (पञ्चमहाय० पृ० १४पं० ९) उनने समझा कि व्यापककी देहसे तो प्रदक्षिणा नहीं कर सक्ते पर मनहींमन कर सक्ते हैं।

श्याम बिन्दु और उस मार्गसे अलौकिक वे तमासे देख पडेंगे जो देखने और दिखलाने के हैं कहनेके नहीं, पर इसीसे क्या ? क्या यही सर्व व्यापक और निर्लेप का ध्यान हुआ ? और यदि उन्हीं चन्द्र सूर्यादि को भगवद्रूप मानों तो क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं हुई ? और क्या इस मानसी मूर्त्तिपूजाके हम विरोधी हैं ? फलतः सिद्धयोगी और अनेक जन्मके सुकृति परमहंसको छोड़ ऐसा कोई नहीं है जो उस निराकार, निर्विकल्प, निर्लेप, सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक ब्रह्म का सहज ही में ध्यान करले।

और आज कालके धूर्त्तराज जो एक और मुकद्दमों की बात चीत करते जाते हैं, एक और अपने रुजगार और धन चिन्तामें डूबे हैं, जिनके कानमें तबला और आंखमें अबला समारही हैं, जिनके हृदयमें अहंकार हिमालय सा खडा है, काम क्रोध लोभ मोहके बवंडरों के से झपट्टे उड रहे हैं, शील और विश्वास कपूर सा उडगया है, वे कपटी कलश्च कां कां करते आकर चट नांक बन्ध कर एक मिनटमें चित्त स्थिर करलें और आंख बन्ध कर आधी मिनट में परब्रह्म का साक्षात् करलें तो क्या आश्चर्य है। यह कलियुग

है इसमें बगुले और बिलाव भी महामुनि कहावेंगे क्योंकि ये उनसे तो कुछ अधिकही ध्यान करते हैं। जरा आज कालके निर्गुणियों की उपासना तो देखिये क्या प्रहसन (फार्स) कर रहे हैं।

आधुनिक निराकारोपासकों में प्रधान ब्रह्मसमाजियों के चरित्र देखिये ! पहले तो ये लोग मन्दिरों के सङ्गीतोंपर हंसते थे पर अब धीरे धीरे इनके ब्रह्म जी भी बडे शोकीन हो गये अब इन के ब्रह्मजी को हर हफ्ते नयें नये गीत चाहिये सुरीला तमूरा और सितार मृदङ्ग चाहिये तथा तान और मूर्छना से भरा गमकदार और नमकदार गाना चाहिये। ब्रह्मजी को रहने को सुन्दर साफ अंगरेजी ढङ्ग का मकान चाहिये और बडे बडे झण्डे और निसान चाहिये। ब्रह्मजी को फूलोंके गुच्छों की भी बड़ी शौक है और केले बन्दनवार भी इन्हें बहुत अच्छी लगती हैं। कहिये इसी का नाम निर्गुणोपासना है। इसी को आप कहते हैं कि केवल ध्यानादि द्वारा हुई ?

(ख) वस्तुतः निर्लेप सच्चिदानन्द निराकार निर्गुण स्वरूप का ध्यान नहीं हो सक्ता, केवल परमहंस और असम्प्रज्ञात योग वाले योगी उसमें डूब

सक्ते हैं इस विषयमें हम फिर कहेंगे। पर इन्हें छोड और कोई भी ध्यान नहीं कर सक्ता यह अटल सिद्धान्त है, तो भी मान भी लीजिये कि निराकारोपासना ध्यानादि द्वारा हो सक्ती है तो भी देखिये तो मूर्त्तिपूजन उसमें सहायक है कि प्रतिबन्धक? इसके लिये और उक्ति युक्ति जाने दीजिये पहले बडे बडे निराकारोपासकों की ओर देखिये कि, उनने साकारोपासनामें सहायता ली है कि नहीं? हम इन छोटे २ फुष्टक्के ब्रह्मज्ञानियों का उदाहरण नहीं देना चाहते जो धर्मबन्धन त्याग ही को बन्धत्याग और स्त्रियों के आवरण भङ्ग ही को आवरणभङ्ग समझते हैं और जो 'सोडावाटर' और 'बिसकुट' में परब्रह्म को टटोलते फिरते हैं। हम आप लोगों की दृष्टि को बड़े पुराने ब्रह्मवादी परमप्रसिद्ध वेदान्ती श्रीशङ्कराचार्यजी की ओर फिराना चाहते हैं। जिस समय श्रीशङ्कराचार्य चरण हुए थे उस समय चारों ओर नास्तिकों का झुण्ड भर गया था वे केवल दृश्य सांसारिक पदार्थों ही को सत्य मानते थे और आत्मा को स्वीकार ही नहीं करते थे उस समय शङ्कराचार्य उनके विरुद्ध खडे हुए और एक ऐसे

विचित्र ढङ्गसे अद्वैत वाद का समर्थन किया कि सब नास्तिकोंका वाक्स्तम्भ हो गया। प्रियवर ! जिसका कोई मत है कोई ग्रन्थ है कोई सम्प्रदाय है और कोई दर्शन है उसके ऊपर तो सभी थोड़ी अथवा बहुत बातें कह सक्ते हैं पर जिसका मत ग्रन्थ कुछ नहीं उस निहङ्ग लाडले पर कोई कहै तो क्या कहै इस कारण नास्तिकोंका और नास्तिकों ऐसे भाव वाले क्षुद्र पुरुषोंका खण्डन करना कठिन है। पर यह शङ्कराचार्य महात्मा ही का काम था कि, ठीक उनके विरुद्ध सिद्धान्त ले ताल ठोक सामने खड़े हो गये नास्तिकों का कथन था कि "ब्रह्म मिथ्या जगत् सत्य" और शङ्कराचार्य जी का सिद्धान्त था कि "ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या"। नास्तिक लोग सबको जगज्जालमें फँसाते थे और शङ्कराचार्यजीने सबको ब्रह्मानन्दमें डुबाना आरम्भ किया और अपने वाक्पाटवसे नास्तिकोंको आस्तिक बना नास्तिकता का मूल नाश कर दिया।

नास्तिकोंको भक्तिका उपदेश नहीं हो सक्ता इस लिये पहले उसको आस्तिक बनाना आवश्यक है सो इसी महाव्यापारमें शङ्कराचार्य जी का प्रधान समय गया। परन्तु ऐसे भारी वेदान्ती होकर भी वे आप

केसे भक्त पुरुष थे कि, जिस मोक्षके पानेके लिये भयानक ज्ञानमें टक्कर खाना बड़ी दांत खटाखटसे सिद्ध कर गये. आप उसी मोक्षको अस्वीकार कर भक्ति मांगने लगे। यह उन्हींका किया स्तव है "न मोक्षस्याकांक्षा .... जननि जननं यातु मम वै भवानी रुद्राणी शिव शिव मृडानीति जपतः" वे कहते हैं कि हमें मोक्षादि कोई सुख नहीं चाहिये हम तो जब तक जियें बस शिव शिव भवानी भवानी कहते रहैं॥ और देखिये वे अपनी षट्पदीमें क्या कहते हैं "दामोदर गुणमन्दिर सुन्दर वदनारविन्द गोविन्द। भवजलधिमथनमन्दिर परमं दरमपनयत्वं मे"। कहते हैं कि, "हे दामोदर! (यह पद उलूखलबन्धन सम्बन्धी है) हे गुणके मन्दिर (अर्थात् सर्व गुण सहित) हे सुन्दर मुख कमल वाले! हे गोविन्द! (यह पद गोवर्द्धनोद्धारकी कथा का सूचक है) हे संसार समुद्रके मथन करनेको मन्दराचल सदृश, मेरा महाभय मिटाइये" देखिये स्वयं शङ्कराचार्य ने इतना निर्गुण निरूपण किया और "नेह नानास्ति" कह कह जगत्को मिथ्या सिद्ध कर केवल ब्रह्मानन्द की तरङ्गों से जगत्को तरङ्गित और प्लावित किया पर उन का अपना भय इस किसी

जंजालसे भी न गया और दामोदर के आगे हाथ जोड़के रोना ही पडा और कहना ही पड़ा कि "परमेश्वर प्रतिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम्" । कौन कहता है कि श्रीशङ्कराचार्य सगुणोपासक न थे और परम भक्त पुरुष न थे किन्तु केवल शुष्कज्ञानी थे। उनके सौन्दर्य लहरी, आनन्द मञ्जरी, षट्पदी, चर्पटी आदि ग्रन्थ देखनेसे भक्ति और सगुणोपासना टपकती सी देखपडती है। अब हम इस पर बल नहीं देना चाहते कि, वे अपने घरमैं शालग्राम अथवा नर्मदेश्वर रखते थे कि नहीं हमारे श्रोता स्वयं समझलेंगे कि जब वे ऐसे साकार सगुण कृष्ण, काली, शिव, भवानीके सेवक थे तो वे मूर्त्ति पूजाको अपने अनुकूल समझते होंगे कि प्रतिकूल ?

यदि कोई बड़े ही अवितर्कित शक्ति वाले प्रबल महात्मा हों और वे ऐसा सामर्थ्य रखते हों कि, एक दम ब्रह्मानन्दहीमें डूब जांय और निर्भय होजांय तो बाबा ऐसे कोई कोई माईके लाल होंगे उनकी वे जानैं ! ! पर सच पूँछिये तो चित्त स्थिर होके परत्मामें लीन हो जाय और जगत्के जालको भूल जाय तो उसीमे मोक्ष है जब यही सिद्धान्त है फिर चित्तका

स्थिर करना जगत्को भूलना और आत्मामें डूबना काम रखता है। यह केवल बकनेसे नहीं होता इसका करना कठिन है जन्म जन्मान्तरसे जिस जगत्के विषय जालमें डूबे हैं क्या उसे निर्गुनियां लोगों के कहने हीं से चट भूल जांयगे! अच्छा एक बात इसी समय न देख लीजिये आप लोग कृपाकर शोचिये कि एक बडा भारी तालाब है-और उसके चारों ओर पक्काघाट बधाँ है-उसी के ठीक मध्यमें एक वट वृक्ष है उस वृक्षकी पल्लवित घनी शाखायें ऐसी फैली हैं कि चारों ओरकी सीढियों पर कुञ्जभवनकीसी शोभा हो रही है-इस को एक मिनट में सब कोई चित्तमें जमा लीजिये,-(हां हां जमालिया)-अच्छा अब मेरा निवेदन यही है कि, इसे सब कोई भूल जाइये-(करतलध्वनि)-यह अवश्य मिथ्या है आपही लोगों का मानलिया हुआ है। भूल जाइये।-क्या साहब "जगत् मिथ्या है" यह अभ्यास कर यदि जगत् को भूल जाना भी सम्भव है तो फिर क्या हुआ यह तालाब मिथ्या है यह वट मिथ्या है यों अभ्यास कर इसे भूल जाइये-अच्छा कुछ दिन की छुट्टी ले लीजिये प्रतिदिन एक घण्टे

यही रगडन्त करते रहिये और जब भूल जाइये तो हमें सूचित कीजियेगा-(अधिक जयध्वनि) देखिये मान भी लिया जाय कि सच मुच जगत् मिथ्या है तो क्या यह अभ्यास सहजमें आ सक्ता है ।

कभी कभी लोगों को दिग्भ्रम हो जाता है तो लोग समझते हैं कि दक्खिन को सूर्योदय हो रहा है तब एक बेर तो चकपकाते हैं कि यह क्या होगया हम जिसे दक्खिन समझते हैं उधर सूर्य्य का चक्का कहां से आगया, फिर निश्चय करते हैं कि नहीं सूर्य तो क्या पूर्व छोड दक्खिन जायगा यह हमारे ही नेत्र कमलों की महिमा है कि हम पूर्व को दक्खिन समझते हैं। यह सर्वथा हमारा भ्रम है ॥ परन्तु देखिये तो कैसी आश्चर्य की बात है कि यह निश्चय होने पर भी ऊपर ऊपर से तो लोग समझ लेते हैं कि यही पूर्व है पर भीतर से धडका नहीं जाता।

कहिये तो इस का क्या कारण है ? भ्रम हुए बडी देर नहीं हुई इस भ्रम के स्थिर रहने की कोई प्रबल सामग्री नहीं है ? इस भ्रम को हटाने की सामग्री में सूर्य ही नारायण चम चमांती किरणों के जालसे अन्धकार हटाते सामने विद्यमान हैं। सहस्रों इष्ट-

मित्र ताली दे हँसते हैं कि "हो हो हो पूर्वको दक्खिन कहते हैं" ! स्वयं भी जानते हैं कि, "यस्यामुदेति सविता किल सैव पूर्वा" यह भी निश्चय किये बैठे हैं निःसन्देह हमारा ही भ्रम है ! पर तो भी वह खटका जीके बाहर नहीं होता !! यह क्षणमात्र का भ्रम भूतसा शिरपर चढगया कि कितनेही छन्द बन्ध कीजिये पर उससे छुटकारा नहीं ? अब सन्ध्या-पूजा आदि के समय बड़े शोच विचारसे पूर्व मुख बैठते हैं पर न जाने कौन तो कान में सनसनाता है कि सूर्य को इधर देख देख इसे पूर्व कहते हैं पर यह पूर्व तो नहीं जान पडता !!-कहिये तो यह भ्रम की वासना हृदयसे क्यों नहीं निकल जाती ? कुछ समझ ही में नहीं आता कि, इस दुर्वासना ने किस मगर धरान से धरा है ! अब आप ही लोग शोचिये तो, जब इस छोटे से भ्रम को हम लोग देखते हैं कि कितना उपाय करनेसे भी उम्रभर साथ जाता है तो जो अनादि वासनासे बन्ध हो रहा है, जिस भ्रम-का आरम्भ समय जानना परम कठिन है जिस भ्रमके विद्यमान रखने की कोटि कोटि दुर्वासनायें प्रत्यक्ष देख पडती हैं और जन्म जन्मान्तरसे जिसका अभ्यास

चला आता है उसका समूल घात नाश चट पट-ही कैसे हो जायगा ॥ अब कहिये तो यदि कोई "भ्रम दूर होगा । ब्रह्मज्ञान हो जायगा और मोक्ष पद मिलैगा" इस मनके सङ्कल्प ही पर जो सगुणोपासना भी छोड छाड़ "घरके न घाट के" हो जाते हैं वे कौन बड़ी बुद्धिमानी प्रगट करते हैं ।

अब देखिये वही वेदान्तियोंके सिद्धान्त मूर्त्तिपूजाद्वारा कैसे सुखपूर्वक सिद्ध होते हैं । जगत् का सम्पर्क छोड़ परत्मामें एक दम लीन हो जाना बात तो इतनी सी है और इसीके साधनेमें अहन्ता ममतादिका त्याग है तो जगन्मिथ्या जगन्मिथ्या कहते कहते तो आप लोगोंको बतलाया ही जा चुका है कि "पादाङ्गुष्ठीशिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति" और बाबा किसी अधिकारी को उसी ढङ्गसे शीघ्र जगत्से असम्पर्क हो और आत्मानुभव हो तो हम उसके लिये कुछ मना भी नहीं करते वह ब्रह्मानन्दमें डूबे, पर देखिये तो भक्तोंका एक कैसा अद्भुत रस्ता है । जैसे कोई रोगी औषधि खाना ही न चाहे और बिना कुपथ्य घी खाये रही न सकै तो वैद्य लोग उसी घी को एक स्वतन्त्ररूप बनाके उसीमें औषध मिलाके

उसे देते हैं वैसे जब यह जन्म जन्मान्तर का विषया सक्त जीव भव रोगके महौषधि स्वरूप परमात्मामें डूबता ही नहीं और परम कुपथ्य विषयोंको छोड़ता ही नहीं तो क्या युक्ति रक्खी गई है कि कुपथ्य ही में औषधि मिलादिया। देखिये जिस जगत्के जालमें जन्म जन्मान्तरसे फँसा हुआ यह जीव दुःख समुद्रमें पड़ रहा है वही जगत् अमृत हो गया। आपके कानोंमें यदि सङ्गीत ऐसा समा गया है कि सोये सोये भी आप मृदंग की परनें सुना करते हैं तो हम आपको सङ्गीतसे छुड़ाना नहीं चाहते। आप वही सङ्गीत भगवन्मन्दिरमें बैठ भगवत्सम्बन्धी भजनोंसे कीजिये तो आप स्वयं देखेंगे कि चित्त कैसा एकाग्र हो भगवान्में डूब गया है। यह सङ्गीत ही का माहात्म्य है कि, जिस मनको योगी लोग शरीरके बन्ध बंध तोड़ भी शीघ्र वश नहीं कर सक्ते हैं उसी चञ्चल मन को सङ्गीत क्षणमात्रमें वश करता है। यह सङ्गीत ही का काम है कि सुर तालमें डूबा हुआ विना अर्थ का "तननतूं" भी जहां किसीने आरम्भ किया कि सुननेवाले काठ हो गये और उन्हीं तानों की गमकोंके साथ कलेजा हिलने लगा और कहाँ बैठे हैं क्या करते हैं कौन

देखता है क्या समय है यह कुछ स्मरण न रहा। अब उसी सङ्गीतमें यदि कुछ अर्थ हो तो मन उसी अर्थमें परिपूर्ण डूब जायगा इसमें भी कुछ सन्देह नहीं है। यदि इस अर्थको आपने बुरा रक्खा तो वही अर्थ नरकमें बोड़ने वाला हुआ (जैसे तुच्छ ग़ज़लें) और यदि यही अर्थ ज्ञान वैराग्य भक्तिसे भरा हुआ भया तो फिर क्या बात है उसी क्षण जगत्को भूल जाइये और उस परमात्माके आनन्दमें डूबिये इसका अनुभव दुराग्रहसे जटिल नास्तिकाधम को कभी न होगा. पर हां जो महात्माओंके सङ्गमें पड़े हैं और भजनानन्दमें डूब चुके हैं वही जानते हैं कि क्या समाधि कैसा आनन्द है कि जहां किसीने "मैं प्रभु पतित पावन सुनें। मैं पतित तुम पतित पावन दोऊ बानक बने" "जाऊं कहां तजि चरन तिहारे"। "जाके प्रियन राम बैदेही" इत्यादि भजन छोड़े कि चित्त एक दम अपना अभिमान छोड़ भगवान्के शरण आता जाता है और अपने दुराचारोंका स्मरण कर एक बेर रुलाईसी आ जाती है। अब इस स्वर कलापमें डूब नादके तन्तुमें लटकता हुआ चित्त संसारको तो भूल जाता है और परमात्माको उसीके अर्थमें पाताहै व उसीमें रमता है.

फिर जिस सगुण मर्त्तिको भजनमें पाता है उसीको आंख खोल मन्दिरमें देखता है उसीको कथाओंमें पाता है उसीका नामले औरों को भी उछलता नाचता देखता है उसीके नाम रामनामें छपे हैं उसीकी छाप तिलकोंमें लगी है, उसीकी सूचना करने वाली तसवीरें लटक रही हैं उसीके वर्णनके स्तोत्रों का पाठ हो रहा है, उसीमें डुबाने वाले काव्य पढे जा रहे हैं, उसीकी दीन बन्धुता शरणागत वत्सलता और पतित पावनता रोम रोममें समा रही है, अब ऐसे समय चित्त एकाएकी जगत्से अलग हो उसी प्रेम-पीयूषके समुद्रमें डूब जाता है । सावन आया तो उसीका उत्सव भादों में उसी का उत्सव गरमी में उसीके मन्दिरोंमें फुहारों की बहार; होली में उसी के उछाह से गुलाल उडती है, कातिक में उसी की दिवाली अन्नकूट होता है और माघमें उसीका वसन्तोत्सव होता है । यों मूर्त्तिपूजा के रङ्ग में मस्त लोगोंको सारा बरस उसी परमात्मा के स्मरण और आनन्दमें डूबे बीतता है और सब दिन भी इसी आनन्दमें जाता है क्योंकि सबेरे उठते ही तो "प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दम्", कहते हुए मङ्गल

आरती के दर्शन किये, आहा ! इस का आनन्द उसी को आता है जिसने मथुरा वृन्दावन आदि स्थानोंमें मङ्गल आरतीके दर्शन किये हैं। आहा ! इस समय भी स्मरण करने से ऐसा जान पड़ता है कि मानों रात्रि का अन्धकार क्रमसे पीछे हट चला है, पूर्व की ओर कुछ कुछ सफेदी आगई है, चिडियों ने धीमें धीमें कोमल सुरसे कुछ कुछ चकचकाहट आरम्भ की है और ठण्डी ठण्डी हवा चल रही है। और इसी समय नींद खुली है और आंख खोलते ही चट नारायण का नामले कुछ आवश्यक कृत्यसे निपट जै जै करते मन्दिर की ओर दौड पडे हैं और वहां भीड की भीड जयध्वनि कर रही है और शृङ्गारित प्रभुकी मूर्त्ति का दर्शन हो रहा है, हम दर्शन तो एक वित्ते भरकी मूर्त्तिका करते हैं पर न जानै क्यों उस समय सर्वव्यापक का साक्षात्कार होता है, हम साधारण वैभवमें इन की झांकी करते हैं पर न जानैं क्यों हमारी आंखों के आगे वह वैभव झलक जाता है कि मानों हम उन पुरुषोत्तम में डूबे हैं जिसके एक रोम पर कोटि ब्रह्माण्ड हैं यह कहैं तो भी थोडा हो। हम सैकडों खिलौने देखा करते

हैं कहने को तो एक वैसी ही मूर्त्ति हमारे सामने है पर इस मूर्त्ति ने न जानें क्या जादू और टोना कर दिया है कि ज्यों ज्यों झुक झुक के दर्शन करते हैं त्यों त्यों हृदय उमंगता जाता है और उस परमात्मा के आनन्द के आंसू चले आते हैं [जयध्वनि] ॥ प्रियवर ऐसे ही थोडी २ देर में सिङ्गार के दर्शन राजभोगके दर्शन सन्ध्या आरती शयन आरती आदि एक पर एक आमोद लगे रहते हैं और सब दिन उसी में बीतता है। और दिन क्या समूचा जीवन उसी आनन्दमें बीतता है।

आप लोग सब समझ सकते हैं कि यदि "ब्रह्म ब्रह्म ब्रह्म जगन्मिथ्या जगन्मिथ्या" इस बकनेही से अन्तः-करण जगत्से विमुख हो उसमें डूब जाता और अङ्ग के बन्ध बन्ध तोड नाक दबाने ही से आनन्दमय स-माधि हो जाती, और सगुणोपासना, भक्तिमार्ग तथा भजन भाव इस भगवन्मयता के विरुद्ध ही समझा जाता तो वेद को भगवद्विषय में इतनी लम्बी चौडी हांकने की क्या आवश्यकता थी यह जगत्से सम्बन्ध छोड परब्रह्म में डूब जाने का उपदेश तो थोडे ही से हो जाता विस्तार तो भक्ति मार्ग और सगुणोपासना

में होता है जहां एक नाम को भी लाख बेर बोलने में पुण्य समझा जाता है । कहिये तो समूचा कर्म-काण्ड किस लिये है ? पूजन किस का ? और स्तव किस का ? क्यों कण्डों के समीप बैठ अध्वर्यु उद्गाता और होता झीखैं ! और किसके गुण वर्णन में बडे बडे मन्त्रों की गाथा का गान करैं ? और वेद को क्या पडा है कि "नमःशङ्कराय च मयस्कराय च—नमो हिरण्यबाहवे—बाहुभ्यामुतते नमः" इत्यादि स्तोत्रों से स्तुति की झड़ बांध दे ?

हां हमारे कोई समाजी जी मन ही मन मुसका आपसमें कटाक्ष चलाते और कहते होंगे कि यज्ञकार्य तो इसलिये है कि घी और खीर की धुवां उड़के मेघ बनावैं परन्तु परमेश्वर करै उनकी बुद्धि उन्हींके पास रहै और और किसी बालक के हृदय को न दुर्गन्धित करै । वे तो हमीं लोगों पर आक्षेप करते हैं कि "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" पर भाई हमारे तो "मुनिवाक्यम् प्रमाणम्, वेद वाक्यं प्रमाणम्, व्यास वाक्यं प्रमाणम्, पण्डितवाक्यं प्रमाणम्, हैं" और उनके बाबा दयानन्दजी का लेख उनको प्रमाण है सो 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्, तो उन्हींके लिये है ।

आप लोगोंमें एक बच्चा भी समझ सक्ताहै कि जो वेद का यही तात्पर्य होता कि किसी प्रकार घी चीनी मेवा मिसरी मोहनभोग और खीर आगमें जलाना जिसमें प्रबल धुआं धक्कड हो तो बस वेद इतना ही कह देता और उसमें इस बातकी क्या आवश्यकता थी कि वेदी इतने ही अंगुल गहरी लम्बी चौडी हो वेदीका आकार ऐसा ही हो यह आहुती इसी मन्त्रसे दी जाय प्रोक्षणी प्रणीता आदिका ऐसा ही ऐसा आकार हो इत्यादि ॥ और यदि रोग की हवा हटाना ही एक मात्र उसका फल होता तब तो थोडा थोडा गन्धक आदि झोकना भी वेद लिखता पर हां इन विशालबुद्धिवाले महात्माओंको तो बस "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" है। चाहै कुछ हो पर जो बाबाजी सरस्वती जी बक झक गये इन्हें तो वह अच्छा लगैगा ॥ कोई कोई नवसिखुए लोग कहते हैं कि नहीं साहब प्रकृतिविद्या (Physics) के अनुसार यह बात सिद्ध है कि उत्तम धूम उठनेसे अच्छे मेघ बनते हैं। वाह वाह !!क्या बात है!!! यह आपने किस पुस्तकमें पढा! आपने कभी प्रकृतिविद्या का मुँह भी देखा है? प्रकृतिविद्या तो इस धुंवां को वहां तक पहुंचती भी न बतलावेगी। प्रकृति-

विद्यानुसार तो मेघ केवल पानी की भाफसे बनते हैं धुआं से नहीं और उस भाफ ही को धुआं कहिये तब तो जगत्प्रसिद्ध "वह्निमान् धूमात्" यह अनुमान हो गया !! तब तो "धूमाभाववान् ह्रदः" इस निश्चय को भी तिलाञ्जलि दी गई ?!

वस्तुतः न तो भाफ धुआं है और न घी चीनी की धुवां से मेघ बनते हैं। यदि घी से मेघ पुष्ट होते तो घी की वर्षा भी होती। यह घी चीनी की भारी धुवां तो नीचे ही रह जाती है मेघ तक पहुँचती भी नहीं।

यह भी न समझियेगा कि अँग्रेजी ही विद्याने इस अन्धकार को दूर किया है और हमारे भारतवर्ष में कोई जानता ही नहीं था कि मेघ कैसे बने हैं। सुनिये मार्कण्डेय पुराण का श्लोक "धूम भूतास्तु तास्वापो निष्क्रामन्तीह सर्वतः। ततो मेघाः प्रजायन्ते स्थानमभ्रमपां स्मृतम् ॥

बस इधर बड़ी दूर तक बढ़ गये फिर अपने उसी ठिकाने आइये कि वेद जो नमः नमः कर इतने लम्बे चौडे स्तोत्र बना रहा है वह भक्ति ही के उद्रेक करने को॥

और पतञ्जलिने योगके उपदेश में तो स्पष्टलिखा है कि "यथाभिमतध्यानाद् वा" [यदेवाभिमतं तदेव ध्यायेत्] "ईश्वरप्राणिधानाद्वा" इत्यादि आचार्य लोगों के छोटे छोटे इशारों में बडी बडी बातें रहती हैं बस यही इशारा है जो कालों कृष्ण आदि अनेक सगुण मूर्त्तिमें से चाहे जिसके ध्यान करने का अर्थ झलकाता है। इससे कोई छत्ते जूते छड़ी के ध्यान का अर्थ निकालैं तो निकालैं उनसे कुछ नहीं कहते।

देखिये तो अब यह कैसा सरल मार्ग हो गया है? सब पदार्थों में मेरी मेरी मेरी इस रीति की जो दृढ दुर्वासना वज्रलेप हो रही है वह सहज ही में लुप्त होगई, जिस ममताके विषयमें संस्कृत में श्लोक है "अशनं मे वसनं मे जाया मे बन्धुवर्गो मे। इति मे मे निगदन्तं कालवृको हन्ति पुरुषाजम्"॥ और जिसे भाषामें लिखा है "मेरो मेरो करत मिलेगो अन्त माटी मैं" देखिये वही ममता किस रीतिसे धीरे धीरे खसकती है। जब कोई पूछता है कि यह आप का है तो उत्तर होता है कि मेरा क्या है ठाकुर जी का है, घर ठाकुर जी का, धन ठाकुर जी का, यहां तक कि लड़के बालों के भी कृष्णदत्त विष्णुदत्त आ-

दि नाम हैं और धीरे धीरे उन पर भी यह पूरी भावना जम गई है कि, ये हमारे क्या हैं नारायण के दिये हैं और उन्हीं के हैं। जब कोई काम करने चले तो भगवन्मान्दिरमें जा भगवान् का दर्शन किया प्रणाम किया तब निकले; कैसा ही दुरूह काम क्यों न हो बल इष्टदेव का रक्खा यदि वह कार्य सिद्ध हुआ तो अपना कुछ अभिमान नहीं हृदय में यही सिद्धान्त जमा है कि यह प्रभु की इच्छा से हुआ है। जिस प्रकारकी, जैसे श्रृंगार की मूर्ति चित्त में जम सक्ती है उसी का आंख खोल के भी दर्शन और आंख बन्द करके भी ध्यान होता है, भोग राग की सब गुम्मार उसी पर निकाली जाती है उसी को भगवदवतारस्वरूप और भगवदवतार को परिपूर्णसच्चिदानन्दस्वरूप मानकर परम्परा से चित्त उसी जगदीश्वर में डूब जाता है। कहिये मित्रगण क्या यह मूर्तिपूजा योग और वेदान्त के विरुद्ध हुई? क्या इस भक्ति भाव ने समाधि में कुछ विघ्न किया? कुछ नहीं यदि है तो कुछ सहायक ही है विरोधी नहीं।

(ग) अब तीसरी बात विचारने को यह रही कि "क्या हम यह कहते हैं कि, जो भगवध्यान में

डूब समाधिमें मस्त हैं और ब्रह्ममय हो गये हैं वे भी समाधि छोड़ मूर्ति पूजा करैं !"—इस पर विशेष विचार आवश्यक नहीं। क्योंकि जिसे समाधि हो गई, जो परमहंस हो गया और जो ब्रह्मसाक्षात्कार के आनन्द में डूब अपने को भी भूल गया और जो उन्मत्त मूक जड की नाईं सोना पत्थर दोनों को बराबर देखता दिगम्बर हो विचरण कर रहा है। उसे न तो हम ही मूर्ति पूजा के विधि बिधान करने कहते हैं और न वही हमारी बात सुनैगा ॥

अब इस प्रश्न की पूरी समालोचना के सङ्क्षेप में यों समझ लेना चाहिये कि प्रश्न तो यह है कि "निराकार की उपासना ध्यानादि द्वारा हो सक्ती है तो मूर्ति पूजा क्यों" इस के उत्तर का निष्कर्ष यह है कि "(क) केवल ध्यानादिही से निर्लेप निराकार मान उपासना नहीं हो सक्ती। (ख) हो भी सकै तो मूर्ति पूजा उस में सहायक है प्रतिबन्धक नहीं। (ग) और यदि कोई ब्रह्मानन्द में डूब चुका हो वा समाधिस्थ हो तो उसे हम नहीं कहते कि फिर बहिर्वृत्ति हो कर हमारी बात सुनै"।

अब पांचवां प्रश्न यों है कि,—

(५) "मूर्ति पूजा से भारतवर्ष की इतनी अवनति हो गई और कुछ लाभ नहीं तो फिर क्यों" ?

इस प्रश्न में दोही बात विचारने की हैं एक तो यह कि (क) मूर्त्ति पूजा से भारत की अवनति हुई है कि नहीं ! दूसरी (ख) कुछ लाभ है कि नहीं ।-यदि कुछ हानि न सिद्ध हो और लाभ दिखला दिया जाय तो यह प्रश्न भी रद्द होगा ।

(क) आप लोग सोचिये तो मूर्ति पूजा से भारतवर्ष की क्या हानि हुई है, क्या आप लोगोंने किसी इतिहास (History) में कहीं पढ़ा है कि किसी समय मान्दिरों से विकटाकार काली दांत कटकटाती निकल आई सो प्रजा को चाब गई, हनुमान जी ने पहाड़ फेंक फेंक गांव कुचल डाले और नृसिंह जी ने दिहाती भुच्चों के पेट फाड़ डाले । क्या सत्यनारायण ने किसी की स्वतन्त्रता छीन ली ? क्या सरस्वती ने संस्कृत में सब को सफा चट कर दिया ! क्या श्रीराम जी ने आप को काम वासना बढ़ादी ! क्या श्री रङ्ग जी ने कुछ कुढ़ङ्ग सिखला दिया ! क्या विश्वनाथ ने आप के हाथ काट डाले ? क्या राधा ने कुछ बाधा डाली ? क्या गङ्गाने आप को नङ्गा किया ?

कुछ पतेवार कहिये न ? किस मूर्त्तिने भारतवर्षका क्या बिगाड़ा ?

जब मूर्त्तिपूजा इतना ही पदार्थ है कि जगदीश्वर का कुछ प्रतिनिधि मान उसके द्वारा चित्तस्थिरता पूर्वक जगदीश्वर में डूबना, तो आप लोग स्वयं सोच ले सक्ते हैं कि यह बात क्या किसी देश को कुछ हानि भी पहुंचा सक्ती है ? यदि आप का यह तात्पर्य हो कि हानि क्यों नहीं पहुंचाती देखिये हम लोग सबेरे नौ बजे तक तकिये में लिपट के सोने वाले नवीन आर्य ठहरे अड़ोस पड़ोस में कहीं मन्दिर हुआ तो सबेरे ही नगाड़े और घड़ी घण्टा हम लोगों के कान फोड़ने लगते हैं यह क्या कम हानि है ? तो ऐसी ऐसी तुच्छ कल्पनाओं के उत्तर भी हम नहीं देना चाहते।

(ख) अब दूसरा अंश विचारिये कि "कुछ लाभ है कि नहीं ?" कुछ गम्भीर दृष्टिसे स्वयं सोचिये कि जहां महात्माओं का स्थान हो अथवा भगवन्मन्दिर हो वहां चित्त का कैसा भाव हो जाता है। वहां अवश्य कुछ भगवत्सम्बन्धी बातों हीं का स्मरण होता है और पाप सम्बन्धी कोई बात का अवसर पड़ने पर

भी जी में धक्का सा लग जाता है कि "हा ! इस स्थान में भी ऐसा बुरा काम करना !!" तो कहिये जिन स्थानों में जाने से सद्वृत्तिका उद्रेक हो दुर्वृत्ति हट चलै उन स्थानों का अधिक अधिक होना हो तो लाभदायक है ! तो यह मूर्त्ति पूजकों हीं का माहात्म्य है कितने नगर के नगर ऐसे स्थानों से भरे हैं और सब ग्रामों में ऐसे एक एक दो दो स्थान हैं । और जब मूर्ति पूजकों ने गङ्गादि नदी, गोवर्द्धनादि पर्वत, मथुरादि नगरी और पिप्पलादि वृक्षों को भी अपना पूज्य मान रक्खा है, तब इन लोगों ने तो हजारों कोस की भूमि अच्छे कार्य की बना रक्खी है यह क्या कुछ कम लाभ है ? हम तो समझते हैं कि मन्दिरों में चौपड़, जुवा, मद्यपान, वेश्यासंसर्ग, किसीने कभी देखा ही नहीं होगा, और मन्दिरोंमें भगवद्भजन, पुराण स्मृतियोंकी कथा, वेदपाठ, मन्त्र जप, ध्यान, अनुष्ठान आदि सबने देखे होंगे तो क्या जिस मूर्त्ति पूजनसम्प्रदाय की यह महिमा है उससे कुछलाभ न हुआ ? प्रायः जहां जहां ठाकुर वाडियां हैं उनके अध्यक्षोंने यह भी प्रबन्ध रक्खा है कि कोई विदेशी यात्री आवें तो उनको दो तीन दिन भोजना-

दि भी मिले और सम्प्राति है भी इत्यादि बहुत उत्तम उत्तम प्रबन्ध होते हैं और होते रहते हैं यह क्या लाभ नहीं है ? और यह सब तो हम नव युवकोंके हृदयङ्गम होने योग्य छोटी छोटी बातें कह गये हैं हमारा सबसे भारी और प्रधान तम लाभ तो वही है जिस लाभके लिये मनुष्य जन्म हुआ है, और जिस लाभसे मनुष्य जन्म सफल होता है। और जिस लाभके आगे दूसरे लाभ तुच्छ हैं और जिस लाभके अनन्तर कोई लाभ रह नहीं जाता। यदि मूर्त्ति पूजासे इतना भारी लाभ होता है कि लोग अपनेको भूल आनन्दमें मत्त हो नाचने लग जाते हैं और पुलकित हो प्रेमाश्रुसे जन्म जन्मान्तरके कल्मषको धो बहाते हैं तो उससे बढ़के और क्या लाभ होगा ? हम समझते हैं कि हमारे श्रोताओंको इस विषयमें अब कोई सन्देह नहीं है कि हम और अधिकाधिक निरूपण करैं। हां कोई कोई मिष्टर लोग कोनेमें बैठे आमही मन यह कहते होंगे किं यूरोप वालोंके यहां तो मूर्त्तिपूजा नहीं है उनकी इतनी उन्नाति कैसे हुई ? पर यह "किं केन लग्नम्" है। मूर्त्तिपूजासे भारतको कुछ हानि नहीं प्रत्युत लाभ है इसके साथ यूरोपके उदाहरणसे क्या

सम्बन्ध ? और हो भी तो आप देख सक्ते हैं कि एक तो ऐसा देश है कि जहां थोड़ी थोड़ी दूर मुर्दे गाड़नेके स्थानोंके घेरे हैं जहां कोई भला आदमी टहलनें भी नहीं जाता और जहां हजारों बीघा जमीन सड़े मांस की खार से नष्ट हो रही है और सूक्ष्म छिद्रोंसे दुर्गन्धित वायु को वमन कर रोग उत्पन्न करती है ॥ और एक दूसरा देश ऐसा है जहां हजारों बीघा जमीन मन्दिरों के हातों में पड़ी है जहां जाने ही से शोकाक्रान्त पुरुष भी प्रसन्न हो जाय, जहां मधुर सङ्गीत सुन मैना कोयल भी अपनी बोलियां सुरीली करती हैं, जहां कहीं पुष्पवाटिका के फूलों पर भ्रमर झङ्कार करते हैं, कहीं धूप की धुआं मेघ बना रहीं है, कहीं कपूर केसर कस्तूरी आदिकी सुगन्ध नासिकाको तृप्त कर रही है, और कहीं जय जय ध्वनि दिगन्त को हर्षित कर रही है ॥ इन दोनों देशों के हानि लाभ आप स्वयं सोच लीजिये हम इस तुच्छ प्रश्नके विचार पर समय नहीं बिताना चाहते। (जयध्वनि)

अब छठा प्रश्न है कि—

(६)"सम्प्रदाय भेदक्यों ?"

लीजिये अब यह प्रश्न आया कि "सम्प्रदाय भेद क्यों" जो यह पूछता है, जान पड़ता है कि उसे

मूर्त्तिपूजा पर तो कोई आपत्ति नहीं उसे केवल इतना ही पूछना है कि यह कैंएक भिन्न भिन्न प्रकारसे क्यों होती है? यह भी पूछने वाले के मन की बात प्रगट होती है कि (क) "भगवत्प्राप्ति का एक ही प्रकार सबके लिये चाहिये" और कदाचित् पूछने वाले ने (ख) सम्प्रदाय भेद के कारण कुछ हानि भी समझी हो।

(क) अच्छा तो यह जो भाव झलका कि "सब के लिये एक ही प्रकार चाहिये भिन्न भिन्न क्यों ?" इसी को कुछ देखिये क्यों कि हमारे मुसल्मान्, क्रिस्तान्, ब्राह्मी और आर्या भी इसी बात का झण्डा उड़ाते हैं कि सबके लिये एक और एक ही प्रकार का धर्म हो क्यों कि जब सब का भगवत्प्राप्ति रूप एक ही उद्देश्य है तब एक प्रकार क्यों न हो ? इस की समालोचनामें पहले यही देखिये कि (१) यदि एकही उद्देश्य हो तो एक ही प्रकार होना अत्याव-श्यक है कि नहीं और फिर यह भी देखेंगे कि (२) सब हिन्दू मुसल्मान् क्रिस्तान् बौद्ध ब्राह्मी आदिका एकही उद्देश्य है कि नहीं (३) फिर आप लोगों की दृष्टि इधर भी फेरेंगे कि सब एक प्रकार से चलैं यह सम्भव है कि नहीं।

(१) देखिये तो क्या बच्चों की सी बात है कि एक ही उद्देश्य हो तो एक ही प्रकार उपाय भी होना चाहिये ॥ देखिये न तो इस को कोई प्रबल युक्ति ही है और न ऐसा व्यवहार ही देखते हैं। प्रत्युत संसार की प्रकृति ही इससे उलटी देखते हैं। देखिये भूख लगने पर कुछ भोजन कर उसे शान्त करना यह उद्देश्य सबका एक है पर इसके पूरे करनेके भिन्न भिन्न व्यापार हैं, कहीं रोज पूरियां छनती हैं, कहीं प्रतिदिन भात पसाया जाता है, कहीं लड्डूए ढलकते हैं और कहीं दही में चूडे सांदे जाते हैं कहिये तो ये प्रकार भेद क्यों ? शीतवातादि के निवारण के लिये वस्त्रधारण करना यह एक उद्देश्य है फिर कहीं मलमल, कहीं छींट, कहीं पगड़ी, कहीं टोपी, इत्यादि सहस्रों प्रकार क्यों ? और उनमें भी एक एक पगड़ी आदि के सहस्रों प्रकार क्यों ? यदि एक उद्देश्य से एक ही प्रकारसे कार्य सम्पादन किया जाय तब तो घर बिछौने ओढ़ने पलङ्ग, मचिया, खटिया, आदि सब पदार्थ एक ही एक प्रकार के होने चाहिये । और आज काल के विज्ञोंके समाज में तो इसका उलटा ही सिद्धान्त देखते हैं वे तो एक उद्देश्य के एक पदार्थ

को सहस्रों प्रकारसे सिद्ध करना ही अपनी विद्या की सफलता समझते हैं देखिये घड़ी के प्रकारकी हैं, बाजे के प्रकारके हैं; और तो जहां तहां पेन्सिल, कलम स्याही और कागद के प्रकारके हैं। क्या एक प्रकारकी बोतामसे कुडता नहीं अटक सक्ता? क्या एकही ढङ्ग-की चेनसे घड़ी नहीं झूल सक्ती? और क्या एकही प्रकारकी छीटसे अङ्ग नहीं ढँक सकता? पर नहीं। आज कालके विद्वान् लोग इसी बातको विद्याकी पराकाष्ठा समझते हैं कि एक काम सैकड़ों रीतिसे हो और इसी बात पर लोग अपनी अपनी चतुराई और विद्या झाड़ते हैं कि हम और एक नया ढङ्ग निकालें? अच्छा कुछ गान की ओर तो ध्यान दीजिये, गान विद्याकी मूल कारिका तो इतनी ही हैं कि एक किसी प्रधान रीतिसे कुछ नियत स्वरों पर आरोह अवरोह करते रहना, पर गाने बजाने वालों की प्रशंसा इसी बातमें है कि वे नये नये ढङ्गसे आवें। जो सितारिया एक ही गीतको घण्टों तक बजावे और बार बार नई ही नई तानें निकाले उसीकी अधिक वाह वाह होती है। यह बात तो अशिक्षित जङ्गलि-योंमें है कि वे प्रायः एकही प्रकारके झोंपडे बनाते हैं

और एकही प्रकारसे धोती मुरेठा लपेटते हैं अथवा यह बात पशु पक्षियोंमें है कि वे एकही प्रकारके व्यापारसे जन्म बिताते हैं और एकही प्रकारके खोते बनाते हैं। तब जहांके निवासियोंनें थोड़े समयसे पढ़ना लिखना सीखा है और थोड़ेही दिनोंसे मनुष्यता पाई है वे यदि ईश्वर पानेके शास्त्रकी उन्नति न करसके हों और एकही मोटेसे पथको मोक्षपथ कहके मान छोड़ा हो तो हो! पर जिन भारतनिवासियोंने और शास्त्रोंको भी भगवत्प्राप्तिहीमें सहायक समझ आदर दिया और उपासनाके शास्त्रको अन्त दर्जे तक पहुंचा दिया उनका उसी उद्देश्यके साधनके लिये अनेक पथ निकालना क्या बुरा है?

यदि एक उद्देश्यसे एकही उपाय ठीक समझा जाता तो, वैद्य, कविराज, हकीम, और डाक्टर लोग एक एक रोगकी एकही एक दवा रखते पर कहिये तो यह कहांकी युक्ति हैं कि एक साधारण ज्वर की तो दश दश पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस प्रकारकी दवाइयाँ हो सकें और इस संसारके जन्ममरणके महाज्वरकी मोटी मोटी एकही दवा हो और उसका एकही अनुपानहो। और यदि उस दवाके सेवन का भी

किसीने भिन्न भिन्न अनुपान और प्रकार निकाला तो नवीन समाजी लोगोंको सन्देह ज्वर का सन्निपात हुआ।

(२) और यही आपने क्योंकर समझा कि सबका एकही उद्देश्य है। कोई स्वर्ग चाहते हैं कोई सायुज्य चाहते हैं कोई सालोक्य चाहते हैं कोई कैङ्कर्य चाहते हैं, कोई संसारिक पुरुष इतनी ही मेहरबानी चाहते हैं, कि इन्साफके दिन कुसूर मुआफ हो, कोई चाहते हैं कि ईसाने जो सबके बदले सजा पाली है इसलिये हमें छुड़ा दे, कोई चाहते हैं देहत्यागके अनन्तर हम वासना रहित शुद्ध चेतन रह जायँ, कोई चाहते हैं हम तो ब्रह्मरूप हुई हैं पर जिस अज्ञान बन्धनसे हम जीव कहला गये वह बन्धन किसी प्रकार छूट जाय इत्यादि सैकड़ों भिन्न २ उद्देश्य कहां तक गिनाये जाँय फिर जब एक एक प्रकारके उद्देश्य साधनके लिये अनेकानेक उपाय हो सकते हैं तो अनेक उद्देश्योंके लिये तो भला कितने उपाय होंगे ?

(३) अच्छा अब यही देखिये कि सब एकही प्रकारसे चलें यह तो कहां तक सम्भव है। और लम्बे लम्बे बड़े बड़े द्वीपों में कुछ कुछ सम्भव हो तो हो भी पर क्या

भारतवर्षमें भी सब प्रान्त और सब वर्णोंका समान-
भाव सम्भव है? यह वह भारतवर्ष है कि जिसके मार-
वाड़ देशमें अफ्रिका का मजा धूल खाता है, काश्मीर
की ठण्ढ पर यूरप की ठण्ढ भी ठण्ढी होजाती
है और वनस्पतियोंकी शोभा पर काबुलके अना-
रोंकी छाती फटती है, और छोहारे छिछोरे पड़
सिकुड़े जाते हैं, इस भारतवर्षमें एक प्रान्त
ऐसा भी है जहां ४०० हाथ के गहरे कुवेंमें पानी का
दर्शन हो और एक प्रान्त ऐसा भी है जहां डुपट्टे में
लोटा बांध पानी निकाल लीजिये, एक प्रान्त ऐसा
भी है जहां चारों ओर पहाड़ और घोर जङ्गल को
घूमनेसे एक कोस भी सरल भूमि नहीं है और जहां-
की पर्वतके ऊपर की बस्तियों में ऐसे हजारों बुड्ढे
रहा करते हैं जो कभी पहाड़ से नीचे उतरेही नहीं,
और इस भारत में कोई प्रान्त ऐसे भी हैं जहां के
लड़के पुस्तकोंमें पहाड़ों का नाम पाते हैं पर पहाड़
देखने को तरसा करते हैं। इस भारत में थोड़ी थोड़ी
दूर पर बोली बदलती हैं, बेष बदलते हैं और व्यव-
हार बदलते हैं। जिनने भारत के अनेक भिन्न भिन्न
प्रान्तों में सभा की होंगी उनने देखा होगा कि पंजाब-

की सभाओंमें लम्बे लम्बे चोगे और घनी डाढी वाले ऐसे पचहत्थे ज्वान जुटते हैं कि उनके सपेद सपेद भारी भारी मुरेठों की ऐसी कतारें बंधतीहैं जैसे किसी तडाग के उपवनमें हजारों हंस इकट्ठे हुए हों। राजपुताने की सभाओंमें रङ्ग बिरङ्गी पगड़ी कसे गले में बलेबड़ा झुलाये तुर्रा झुमाते ढीला पेच डुलाते छूँछाँ करते ऐसे छैल छबीले जमते हैं कि मानो किसी बगीचे में विचित्र बसन्त ऋतु आया हो जिससे सहस्रों फूलों के रङ्ग बिरङ्गे गुच्छों से सब पौधे लद्द फद्द हो गये हों ! अब कुछ बङ्गदेश की ओर दृष्टि दीजिये तो वहां की सभाओं में जिन्हें देखने से दया का उद्रेक हो ऐसे कोमल कोमल अङ्ग वाले छोटे कुडते और लम्बी धोती वाले बाबू लोग इकट्ठे होते हैं उनके चिकने चिकने घुँघुरारे काले काले केश वाले उघड़े मस्तकों से सभा एकदम श्रीकृष्णमय हो-जाती है और ऐसी सभा दीख पड़ती है कि मानो किसी खिले हुए रङ्ग बिरङ्गे कमलों से भरे हुए ता-लाब पर करोड़ों भौंरों के झुण्ड आपड़े हों और उनसे सब कमल ढंप गये हों ! तो क्या ऐसे भारत में सम्भव है कि सब एकही प्रकार से चलें ? और केवल

देश भेद क्या ? जातिभेद वर्णभेद आश्रमभेद वयोभेद आदि के कारण से भी क्या अधिकारी एक प्रकार-के ठहर सक्ते हैं ? ।

यदि एक रीति पर सबका चलना कुछ भी सम्भव होता तो जो लोग एकता का झण्डा उड़ा रहे हैं उन लोगों के समाज तो एक ढङ्ग से रहते । आप लोगों ने ब्रह्मसमाज का नाम सुना होगा ! बङ्ग देश-में ब्रह्मसमाज की ओर से बड़े बड़े ब्रह्म मंदिर हैं और ब्रह्मसमाजी लोग बड़े बड़े समारोह से आनंद बाजार बांध के बैठते हैं । राजा राममोहन रायने इसका संस्थापन किया और जो जो इसमें पड़े सो प्रायः इसी सिद्धान्त वाले होगये कि ब्रह्मसमाज के एक उद्देश्य एक क्रिया और एक ढङ्ग रखके एक दिन समस्त भारतवर्ष क्या समस्त संसार को एक सूतमें बांध लेना है । अच्छा अब देखिये तो इन एकताके गुब्बारोंने, इन देश देशान्तर के मतों के सारांश को सहज में पी बैठने वाले मानवाकार स्पञ्जों ने, और इन नई नई उक्ति युक्तियों के तोंद-वाले तुन्दिलों ने कहांतक एकता बढ़ाई और क्या किया ? क्या इनमें आपस में मत भेद नहीं होते हैं ?

थोड़े दिन हुए भागलपुर जुबिली कालिजमें ब्रह्मसमाजके विद्यमान आचार्य बाबू प्रतापचन्द्र मजूमदारने अङ्गरेजी में बड़ी लम्बी चौड़ी वक्तृता दी थी उसमें उनने सैकड़ों श्रोताओं के बीच में स्पष्ट कहा था कि " It is easy to seperate two fighting bulldogs. but it is difficult to seperate two fighting Brahmos" यह तो उनके आचार्योंका वाक्य है और उनका छोटासा समूह भी आदि ब्रह्मसमाज, साधारण ब्रह्मसमाज, और नवविधान तथा और एक प्रकारका झुलन्त यों साढ़े तीन प्रकारका होरहा है तब कहिये तो जब वे अपने समाजको एक ढङ्गसे नहीं चला सक्ते हैं और उनके घरहीमें दिन दिन सम्प्रदाय भेद निकले जातेहैं तो यह कब और कैसे सम्भवहै कि इतना बड़ा भारतवर्ष एकही ढङ्गसे चले !

हमारे मुसल्मान् भाई लोग भी सबके साथ खाने पीनेही को एक सम्प्रदाय कह भले ही समझते रहें कि हम सब एक ढङ्गके हैं पर क्या यह सच है? क्या हमलोग जो मुहर्रमकी यह बड़ी धूम देखते हैं जिसमें सब हिन्दुस्थान एक बेर हिल उठता है और जिसमें गली गली ताज़ियोंकी बारात निकलती हैं, नीली पताकाओंके मेघमण्डल घूम जाते हैं और हाय हाय की ध्वनि धाम धामसे ध्वनित होती हैं

और ताजियों पर फूल माला चढ़ती हैं शर्बत बंटते हैं सो क्या आपलोग समझते हैं कि सभी मुसल्मान् इसके पाबंद हैं? मौलवी लोग कहते हैं मुहर्रम भी एक किस्मकी बुतपरस्ती है सो समझदारोंको न करनी चाहिये और और इसके लिये जान देते हैं। फिर क्या शेख सय्यद, मुगल, पठान ये चार जातिभेद उनमें नहीं हैं? और क्या शीया सुन्नी आपस की पूरी कटाकट वाले दो भारी सम्प्रदाय नहीं हैं और क्या तिसपर भी सूफियोंकी निराली सम्प्रदाय नहीं है? और क्या इनके भी अन्तर्गत बीसों भेद नहीं हैं?

फिर क्या ईसाई लोग जो नगाड़ा बजा रहे हैं 'एक तौर एक तौर' सो आप लोग समझते हैं कि ईसाई सब एकही किस्मके हैं? यह बात तो पेड़ों में भी सम्भव नहीं है कि सब आमके रूप एकही भांतिके हों और सब डालें भी आपसमें एकही आकार विकारकी हों तब यह कौन समझ सकता है कि सब क्रिश्चन् एक रीतिके हों? उनमें भी मन्तव्य और उपासनाके भेदसे Protestent, Roman Cathalic और Greek Church. आदि अनेक भेद हैं॥ भला आस्तिक तो जहां तहां नास्तिक तो सब एक प्रकारके होते।

पर चार्वाक, माध्यमिकादि भेदसे वे भी अनेक हैं। तब यह कैसे होसक्ता है कि बुद्धिमान् लोगोंका वर्ग एकही उद्देश्य तो मानें पर अधिकारीभेदसे रीति-भेद न करै।

(ख) अच्छा अब इस बातकी भी मीमांसा कर-डालिये कि, सम्प्रदाय भेदसे भारतको क्या हानि हुई ? आप लोगोंने इतिहास विद्या पढ़ी है उससे कोई बात आप लोगोंसे छिपी नहीं है। आप लोग जानते हैं कि भारतकी अवनति का प्रथम और प्रधान कारण तो कलिके आरम्भ ही में भारतयुद्ध हुआ जिसमें भाइयोंमें एकने दूसरेको विष भी खिला-या, वनमें भी निकाल दिया, आगमें भी जला दिया और छोटे छोटे बच्चे भतीजे मार डाले। उसी दिन भारतने जो आंसू भरे हैं सो आज तक इसके आंसू पोंछने वाला कोई उत्पन्न न हुआ। जिस दिन साक्षात् धर्मस्वरूप महाराज युधिष्ठिर वनमें निकाल दियेगये उसी दिनसे धर्मने इस पवित्र भारतभूमिको छोडा। जिस दिन महाराज युधिष्ठिरकी पटरानी भारतकी राज-लक्ष्मी स्वरूप भगवती द्रौपदीके झोंटे और वस्त्र भरी स-भामें खींचे गये मानो उसी दिन भारतकी राजलक्ष्मीको

किसीने चोटी पकडके खींच लिया उसी द्रौपदीके आंसुवोंकी झडमें भारत का पानी उतर गया, जिस दिन पुत्रशोकसे दुःखित बूढे द्रोणाचार्य की ग्रीवा पर खड्ग फिरा उसी दिन भारत अधमरा होगया, जिस दिन श्रीकृष्णके पक्षपातियों पर भी तरवारें निकलीं उसी दिन भारतके शत्रु प्रगट होगये, जिस दिन श्रीकृष्ण और विदुर का उपदेश नहीं माना गया उसी दिन देश उच्छृंखल हो गया, जिसदिन परमाचार्य परमवीर महात्मा भी-ष्माचार्य शर शय्यापर पडे उसी दिन भारत को शूलबेध हुआ और जिस दिन अन्तिम धर्मवीर महा-राज परीक्षित् को तक्षक सर्पने काटा उसी दिन से भारत मूर्छित पडा है! तो क्या प्रियवर उन भाई भाइयोंमें कुछ सम्प्रदाय का झगडा था? क्या द्रौपदी और दुःशासनमें कुछ मतभेद का झगडा था? क्या परीक्षित् और ऋषियोंमें सम्प्रदायिक बखेडे थे? देखिये यह भारत का कैसा घोर समय था कि यवनों ने भी प्रथम प्रथम इस भारत भूमिपर उसी समय पादार्पण किया था। काली नामक यवन जो तीन कोटि यवनों का मालिक था (कौन जाने यह गोर

का राजा था अथवा काबुल का अथवा किसी और देश का राजा था) उसी समय सेना लिये मथुरातक चला आया और श्रीकृष्णसे युद्ध किया। कहिये तो इस यवन प्रवेशमें सम्प्रदाय भेद कहांतक कारण है ? अनन्तर जब सिकन्दर भारत पर चढा तो कहिये भारतके द्वैतवाद और अद्वैत वादोंने उसकी क्या सहायता की और भारत को लुटवादिया ! महमूदगजनवी ने बारह बेर भारत को लूटा तब कहिये तो क्या सोमनाथ के तोडे जाने के समय केवल शैवोंहीं को दुःख भया था और और वैष्णव प्रभृतियों ने क्या ग़जनवी साहब का साथ दिया था ? राठौर वंश ने जो यवनों का स्वागत किया और भारत की चोटी यवनों के हाथ थमादी क्या इसमें भी कुछ सम्प्रदाय भेद कारण है ? क्या आप लोग पढे लिखे विद्वान् लोग भी नहीं समझ सकते हैं ? कि भारत की अवनति किस कारण से है. भारत की अवनति के कारण हैं संस्कृत विद्या का घटना, स्वतन्त्रता छोड परतन्त्र होना, विदेशीय वस्त्रादि का प्रचार होना, रेल आदि द्वारा स्वदेशीय सम्पत्ति का विदेश जाना, इत्यादि। तो कहिये कि, इनमें कौनसा ऐसा अत्या-

चार है जो सम्प्रदाय भेदसे उत्तेजित हो अवनति का कारण हुआ ?

क्या किसी इतिहासमें आप लोग दिखला सक्ते हैं कि वैष्णवोंने शैवों को कतल कर डाला अथवा शैवों ने शाक्तों के गांव जला डाले।

क्या कहियेगा हिन्दू मुसल्मानों की सैकड़ों लड़ाइयां हुईं और लाखों सिर कटे यह भी तो सम्प्रदायभेद ही से है सब एक मत होते तो क्यों होता ? ऐसी तुच्छ युक्तियों पर तो एक छोकड़ा भी ध्यान देना न चाहेगा, क्योंकि प्रश्न भारतीय सनातनधर्म के मत भेद और सम्प्रदाय भेद पर हैं कुछ सारे संसार के मत भेद पर नहीं हैं ? और वे युद्ध भी मुसल्मानों के साथ मतभेद के कारण न हुए किन्तु उन की लम्पटता, क्रूरता आदि सहित विमत पर बलात्कार के स्वभाव से हुए।

मुसल्मानी युद्धों में मत भेद ही कारण होता तो हुमायूं और कामरान् इन भाई भाइयों में लड़ाइया न होती और औरंगजेब अपने सगे भाइयों को कथावशेष न करता।

अब यदि कहिये कि साहब यह भी तो हम देखते हैं कि जब पण्डित लोग इकट्ठे होते हैं तो एक द्वैत

और एक अद्वैत लेके झगडे उठा देते हैं वे झगडे भी तो बुरे हैं? जिस बुद्धिमान् ने यह बात सोची हो उसकी तो बलैया लेना चाहिये। प्रियवर सभाओं में सब पण्डित परस्पर प्रेम में गद्गद हो के जाते हैं और कोई प्रकरण निकलने पर कुछ शास्त्रीय तर्क वितर्कका आमोद करते हैं और हैं. तब फिर वैसे ही परस्पर प्रेमालिङ्गनके साथ उठते हैं इसमें झगड़ा कहा हुआ और क्या हुआ यह तो बाबा वे ही विशालबुद्धिवाले जाने जिनने प्रश्न किया है।

यदि कहिये थोड़ी देर एक दूसरेके विजयका यत्न करते हैं यह भी तो झगडा है, पर ऐसी ऐसी बात-वाले तो कह उठैंगे गेंद खेलने वाले, शतरञ्ज खेलने वाले, कुस्ती वाले और गाने बजानेका लड़न्त वाले भी पुलिसके सपुर्द किये जांय।

फलतः यही जँचता है कि सम्प्रदायभेद आवश्यक है क्योंकि देशभेद और जातिभेद आदिके अतिरिक्त भी ऐसा देखा गया है कि स्वभावतः किसी पुरुष की एक प्रकारकी प्रकृति है और दूसरा देशजाति वय सब कुछमें पहलेके समान हैं पर उसकी दूसरी प्रकृति है। स्कूलमें प्रत्यक्ष देखा जाता है कि दो

सहोदर भाइयोंमें भी किसीकी रुचि और शक्ति गणित में पल्लवित होती है पर दूसरेकी बुद्धिमें वह धसता ही नहीं पर उसे व्याकरण ही में नई नई सूझती है। किसीको स्वयं प्रतिभा रहती है वह बिना सिखलाये रागमें राग मिला कविता करता है और कोई षट्-शास्त्री होकर भी श्लोक नहीं बना सक्ता। प्रियवर! वैसे ही कोई ऐसे होते हैं जिनके हृदयमें सहजमें जीव ब्रह्मका अभेद धस जाता है और चाहे कोई कोटि कला कर हारे पर यह सिद्धान्त नहीं टलता और दूसरी बात दिलमें नहीं समा सक्ती। और दूसरे कोई ऐसे होते हैं जिनके हृदयमें जीव ब्रह्म और जगत् इन तीनोंका भेद ही वज्रलेप हो रहा है वे लोग भी कभी दूसरा सिद्धान्त मान ही नहीं सक्ते। ऐसे ही किसीका चित्त ईश्वरके घरसे ऐसा ही आया है कि वह सगुणोपासना ही मान सक्ता है और दूसरा निर्गुण ही में डूब सक्ता है, इत्यादि। ऐसी अवस्थामें क्या धर्मका ऐसा ही होना अच्छा कहलायेगा? कि गले उतरे न उतरे पर एक ही बात मानो? तब तो कुछ थोड़ी सी मण्डली ऐसी निकलैंगी जो ईश्वर को तुष्ट कर सकैं और बाकी तो सब गये। पर वह धर्मकी कैसी

उदारता और दयालुता समझी जायगी जो सब प्रकारके स्वभाव वाले पुरुषोंकी उनके मस्तिष्कके अनुसार एक पथ रखकर उसी सत्य धर्मका उपदेश करे। काम क्रोध आदिका विजय करना, इन्द्रिय परायण न रहना, सत्य, शौच, दया, आर्जव आदि धारण कर परोपकार को कर्त्तव्य समझना और परमात्मामें डूब तन्मय हो जाना यह उद्देश्य सबका एक है बस इसीका साधन देशकाल समाज प्रकृति आदिके अनुसार होते होते आचार्योंके बांधे भांति भांतिके नियम और सदाचारके भेदसे (जो आवश्यकर्था) सम्प्रदाय भेद हुए। और परमात्माकी भी कैसी अपार करुणा है कि जो जैसे जैसे पथसे भगवान् का आराधन करता है भगवान् उसको उसीमें दृढ करते हैं (यो यो यां यां तनुर्मक्त्यः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्। गीता) और फिर जो जिस रूपका परमात्माको मानकर भजता है भगवान् भी तद्रूप ही हो हो कर उसे फल देते हैं "तं यथा यथोपासते तदेव भवति तद्धैतान् भूत्वावति, तस्मादेनमेवँवित् सर्वैरेवैतैरुपासीत सर्वं ह्येतद भवति, सर्वं ह्येतन्न मेतद्

भूत्वावति" (श०मं० ब्रा० २०)[यह वेदमें स्पष्ट लिखा है कि, उसको लोग जैसे जैसे अर्थात् जिस जिस रूपमें उपासना करते हैं वह वही हो जाता है और उसी रूपसे सेवकोंकी रक्षा करताहै। इसलिये लोगोंको चाहिये कि सभी रूपोंमें उपासना करै तो वह सर्वस्वरूप होकर उसकी रक्षा करता है—इस प्रकरणमें पूर्वसे विष सर्प माया आदिकी उपासना और अधिकारियोंका विवरण है और शेषमें यह उल्लेख है] फिर वेद स्वयं भिन्न २ उपासना दिखलाकर और भी अनेक स्थानोंमें सम्प्रदाय भेदकी जड़ बांधता है जैसे छान्दो० उ० "ॐमित्यक्षरमुपासीत" ओं इस अक्षर ही की उपासना करे, "सय एवं विद्वान् आदित्यं ब्रह्मेत्युपास्ते" सूर्य को ब्रह्म मानकर उपासना करे, "मनो ब्रह्मेत्युपास्ते" "वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते" मन वा वाणी को ब्रह्ममान कर उपासना करे, "यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते" याव न्नाम्नो गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति" नाम को ब्रह्म मान कर उपासना करे "य एषोऽन्तरादित्ये दृश्यते हिरणमयः पुरुषः" सूर्यमण्डल मध्यवर्ती पुरुष की उपासना, (याजुषमन्त्र) "वाहुभ्यामुत ते नमः"

द्विबाहु की उपासना, "उभाभ्यामुतते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने" धनुर्धारी द्विबाहु की उपासना, "नमोऽस्तुनीलग्रीवाय" इत्यादि सैकड़ों रूपों में उसी परमात्मा के आराधन की आज्ञा वेद स्वयं दे रहा है। सब वेदानुसार भी सम्प्रदायों का यदि भेद हो तो अनर्थ नहीं है प्रत्युत उचितही है।

यह उपासनाभेद भी दो प्रकार का है। एक अपने ही ढङ्ग से मोक्ष तक पहुंचाने वाला, दूसरा कुछ चित्त शुद्ध कर किसी उत्कृष्ट उपासनाके योग्य करदेने वाला प्रथम के उदाहरण में केवलाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत आदिक सम्प्रदाय जो व्यासविद्या अथवा शाण्डिल्यविद्या के अनुसार उपासना स्वरूप हैं ये मार्गमोक्षतक साक्षात् सम्बन्ध रखते हैं और यदि अधिकारी के हाथ पड़ें और यदि उपासकसे कोई च्युति न हो तो वह मुक्त होगा इस में कोई सन्देह नहीं। इन सम्प्रदायों में परस्पर वाद विवादों का फल केवल स्वसम्प्रदाय की दृढ़ता ही फल है इन वादविवादों के सुनने से प्रत्येक सम्प्रदाय वालों को अपनी अपनी सम्प्रदाय पर अश्रद्धा शङ्का आदि दुर्वासना दूर होती हैं और भक्ति बढती है। यदि

वादविवाद और परस्पर शास्त्रार्थ की परिपाटी न होती तो आजकल कलियुग के कौतुकी कलओं के समय में भक्ति की सुधासे जगत् को प्लावित करने वाले रामानुज वल्लभ प्रभृति परमाचार्यों की कुछ न चलती पर शास्त्रार्थों को सहस्रदूषणी शतदूषणियों ने भी यह कैसा परमोपकार किया है कि यदि कोई उतने दूषण दे तो भी उसके उत्तर साम्प्रदायिक लोग जानते हैं आजकाल के छिछोरे छोकरे क्या सम्प्रदायों के ऊपर आक्षेप करैंगे ? जहां तक प्रश्नोत्तर पहले हो चुके हैं उनमें का तो किसी को स्वप्न भी न हुआ होगा ।

परस्पर साम्प्रदायिकों की कैसी प्रीति रहती है कि कही नहीं जाती । और प्रश्नोत्तरों के यही अर्थ होते हैं कि शिष्य को यों शङ्का हो तो कैसे समझाइयेगा, अथवा कोई नास्तिक यों पूछे तो क्या उत्तर दीजियेगा अथवा आपही को दैवात् कोई यह शङ्का धरादे तो अपने मत पर दृढता का क्या उत्तर रखते हैं । बस सम्प्रदाय भेद यों अधिकारियों को अपने अपने मार्ग पर स्थिर रखता है । और अन्त में मोक्ष तक पहुंचाता है ।

कोई कहते हैं कि एक ही मार्ग सच होगा और सब तो सच न होंगे वे इन उदाहरणों का भी कुछ स्मरण करलें। एक स्थल में जाने के लिये चारों ओर से भिन्न भिन्न स्थानों के यात्री भिन्न भिन्न मार्गोंसे आते हैं पर वहां हीं पहुंचते हैं। देश देशान्तर के निवासी उसी क, ख, आदि वर्ण समुदाय को भिन्न भिन्न रीति से लिखते हैं पर सब 'क' को 'क' ही कहते हैं और पठनपाठनरूप एक ही फल पाते हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के भिन्न भिन्न यन्त्रों से एक ही राग बजाई जाती है। इत्यादि यदि कहिये इनमें परस्पर विरुद्ध व्यापार नहीं देखते हैं पर सम्प्रदाय भेद में तो बहुत से एक दूसरे के विरुद्धव्यापार होते हैं तो विरुद्ध होकर उसी स्थान तक पहुंचने वाले कैसे हो सक्ते हैं? पर यह भी तो देख लीजिये कि एकही रोग की पांच वैद्य पांच रीति से औषध करते हैं तो प्रायः परस्पर विरुद्ध उपचार भी चलादेते हैं। एक वैद्य शीतोपचार छोड़ सब उष्ण उपचार बतलाते हैं और दूसरे उष्ण छोड़ केवल शीतल बतलाते हैं। एक दूध मना करते हैं एक दूध ही में डुबा देते हैं, एक मीठा मना करते

हैं एक मीठी चासनी ही में सब दवा देते हैं पर प्रत्यक्ष ही में सब रीति ही आरोग्य करने वाली होती हैं। यदि एक अमृत और एक विष होती तो राजाज्ञासे वह परिपाटी बन्द करदी जाती॥

दूसरी उपासनाप्रणाली किसी प्रधान उपासनामें सहायकहै यह अति साधारण है और अतिसूक्ष्म बुद्धिसे अवधेय है। इसकी कक्षामें भ्रातृपूजा, पितृपूजा गुरुपूजा, पृथ्वीपूजा, मेघपूजा आदि सब हैं। इनसे चित्त शुद्ध होने पर परमात्माकी सर्वशक्तिमत्त और सर्वपूज्यता पर विश्वास जमता है। और पहले तो समुद्र, मेघ, बिजली आदिको अलग अलग देव मानता है थोड़े समय के अनन्तर उन समुद्र आदिके अधिष्ठातृदेव को ईश्वर समझता है फिर सबको उसी एक परमात्माकी कला स्वरूप समझ उसी आनन्दमयमें डूबता है। इस परम्पराके इशारे भी वेद तक पाये जाते हैं जैसे "नमस्ते अस्तु विद्यते नमस्तेस्तनयित्नव" "समुद्रोऽसि" "यदेतन्मण्डलं तपति" "य एतस्मिन्मण्डले पुरुषः सोऽग्निस्तानि मजूंषि" "योऽसावदित्ये पुरुषः सोऽसावहम्" सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" ॥ बस समझने वालेको तो

इतना कथन भी बहुतहै और कान उठा इधर उधर भागने वाले हैं ऐसे तुच्छ लोग तो या इसे गप्प ही कह देंगे या इन्हीं मन्त्रोंसे ११ विवाहका अर्थ निकालने लगैंगे ॥ अब यहां हम इस प्रश्नकी समालोचना छोड़ते हैं। आप लोग देखैंगे कि चतुर्थ प्रश्न की समालोचना में जो कुछ मैं कह आया हूं वह भी इस विषयमें कितना उपकारी है और उसके पुनः कथनकी आवश्यकता नहीं है।

अच्छा तो अब सातवां प्रश्न भी ठीक बजा देख लीजिये इसमें क्या है?

(७) "वेद–विरुद्ध क्यों करना" ?

इस फुष्टक्की बातमें बहुत समय लगा हम आप लोगोंका समय नष्ट करना नहीं चाहते।

आप लोग जानते हैं कि, वेदसे और विषयोंसे चार प्रकारमें कोई न कोई सबन्ध रहता है। वे चार सम्बन्ध योंहैं । पूर्णोक्ति, संक्षिप्तोक्ति, अनुक्ति, और निषेध। (१) अर्थात् कोई विषय तो पूर्णोक्त होता है अर्थात् ज्योंका त्यों वेदोक्तही जैसे अग्निचयनादि । (२) दूसरा सांक्षिप्तोक्ति अर्थात् संक्षेपसे कहा हुआ रहता है और पद्धति आदिद्वारा विस्तार पाकर लोकमें

प्रचलित होता है जैसे उपनयनादि (३) तीसरा अनुक्त, जिस विषयमें वेदने कुछ न कहा हो जैसे सितार बजाना, चपकन सीनी आदि । (४) चौथा निषिद्ध, जिसे वेदने न करनेको कहा हो जैसे जुआ हिंसा आदि । तो प्रश्नकर्त्ता वेदके कैसे विषयको वेद-विरुद्ध कहते हैं ?

(१) पहला तो वेदविरुद्ध कैसे कहते होंगे क्योंकि जो आनुपूर्वीसे उक्त है वह भी वेद विरुद्ध कहलावे तब तो फिर वेदानुकूल क्या होगा ?

(२) अब यदि दूसरे अर्थात् संक्षिप्तोक्तको वेद विरुद्ध कहैं और ऐसे वेदविरुद्ध कार्यका त्याग करना कहैं तब तो रातदिनमें जितना कार्य किया जाय अथवा किया जा सक्ता है वह सब त्याज्य ही हो जाय। और यदि संक्षिप्तोक्त भी वेदविरुद्ध हो और यदि इसे वेदोक्त मत चलने वालोंको नरकमें दण्ड हो तब तो नहीं जानते हो सो सोलह श्रेयुत बाबा संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वतीकी आज काल यम-लोकमें क्या दशा होती होगी? जिनने केवल "एकाचमे तिस्रश्चमे" आदि अल्प इशारापाते ही समस्त गणित शास्त्र वेदोक्त मानलिया और जिनने कहीं आग धुआं

का नाम पाते ही समस्त बाह्यप्रपञ्च विद्या को वेदोक्त मान लिया और उनका यहां तक सम्मान किया कि जो पदार्थविद्या जानतेहैं उनके नाम रोज तर्पण तक किया जाय यह विधि कर दो । हा ! जिसने औरोंके स्वीकृत वास्तविक सिद्धान्तों को गप्प कहा अपनी कपोलकल्पित कोरी कदर्य्य कल्पनाओं को वेदोक्त कह मारा उसपर परमात्मा का कैसा कोप होगा ॥ शिव शिव कहिये तो उनने यह किस वेदसे तर्पण लिया कि 'ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्' का अर्थ यों किया है कि साङ्गोपाङ्ग वेद जानने वालों का नाम ब्रह्माहै (यदि रखिये दयानन्दजी की समझ में ब्रह्मा कोई देव नहीं हैं) उनीकी स्त्री और बेटी सहित उन्हीं का तर्पण करना यह देवतर्पण होगा आगे बढ के कहते हैं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम् इसका अर्थ यह है कि जो ब्रह्माके प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढावें (देखिये अब इन ने पौराणिकों की तरह ब्रह्मा और उनके प्रपौत्र मरीचि भी स्वीकार किये—छि ! उनकी स्त्री पुत्र तथा शिष्यसहित मण्डली का तर्पण करना यह इनका ऋषि तर्पण हुआ । अब जरा इन के पितरों का वृत्तान्त सुनिये । इन का पितृतर्पण यो है।

सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् सोमसद् का अर्थ है परमात्मा और पदार्थ विद्या के जानने वाले (वे ही जाने कि किस वेदमें सोमसद का यह अर्थ लिखा है अथवा ठीक है पदार्थविद्यावाले कालिज के उत्तीर्णों की भी तो कुछ खुशामद चाहिये) यों ही अब कितना कहैं अग्निष्वात्त का अर्थ लिखते हैं, बिजली का काम जानने वाले क्या तारघर वालों को भी पितर ही कहियेगा ?) 'सोमपाः' डाक्टर। 'आज्यपाः' का अर्थ सुनिये इसके लिये मैं उनका लेख ज्यों का त्यों सामने रखता हूं "जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत दुग्धादि के खाने और पीने हारे हों वे आज्यपाः" (लीजिये साहब बडे बडे बाबू और जमींदार लोग भी इनके पितर हुए, यह बडे ही हास्य का प्रकरण है, यह वेही जानैं कि जब तर्पणादि नित्य कर्म्म ठहरे और उनकी समझ में जीवितों हीं के ठहरे तो सभी पुरुषों का रोज बाह्य विद्याके "फ़िज़िकल् प्रोफ़ेसर" आचार्य और तार घरके मास्टर कहां मिलैंगे ? और यह भी वही जानें कि मनमानें वाक्य किस अन्दाजसे उनने बनाये और उन वाक्यों का क्या करना क्या पढ पढके बाबू लोगों का पैर धोना

कि बाबू लोगों के नाम पर अञ्जली देना और फिर कात्यायन की नकल उतारने की भी कैसी कोशिश की है कि कहीं नमः कहीं स्वधा भी लगादिया जिसे यह नकलें देखनी हो वह सत्यार्थप्रकाश ३ य संस्करण ९८ और ९९ पृष्ठ देखलें ॥

हमें तो इस प्रकरणमें इतनाही कहना है कि, यदि संक्षिप्तोक्त भी वेदविरुद्ध समझा जाय तो इस गडबड़ाध्याय को क्या कहिये गा ?

तीसरा अनुक्त विषय है जिसमें वेदने श्वेत कृष्ण कुछ न कहा हो। क्या कोई कह सक्ता है कि, वेदानुक्त विषय नहीं करना ऐसा हो तो चाहे आर्या हों चाहे अनार्या हों, जो ऐसा कहने वाले हैं वे और छोड अपनी ही रात दिन को कुल क्रिया वेदमें लिखी दिखला दें तो ! संसार में वेदानुक्त ही तो अधिक है। फलतः एक तो हिन्दुस्थान दुर्दशाक्रमसे आप ही सब सुखोंसे हाथ धो बैठा है फिर यदि संक्षिप्तोक्त और अनुक्त विषय भी इसके हाथमें छीना जाय तब तो बम्बई के सब कारखाने टूट जांय और इतना ही क्या सब व्यवहार ही बन्द हो जायं

(४) अच्छा अब चौथा निषिद्ध विषय रहा। निषिद्ध विषय त्याज्य है यह यदि प्रश्नकर्त्ता का तात्प-

र्य हो तो यह तो हम भी कहते हैं । अच्छा अब मूर्त्तिपूजन नहीं करना यह वेद में कहां लिखा है सो वे दिखलावें ।

हम दूर खड़े हुए दिहातनिवासी लोगोंको सावधान किये देते हैं । बाबा सावधान सावधान आज काल ऐसे लोग बहुत उठ खडे हुए हैं जो होटलके महा-प्रसाद को आप भी उड़ावेंगे और अपने श्रोताओंको भी चखानेका यत्न करेंगे और यदि कोई भगवन्मान्दिरमें बैठ रामायणकी कथा सुनै तो उससे जल मरेंगे और उसे कहैंगे कि तुम वेदविरुद्ध काम करते हो । साव-धान ! उनके गेरुए कपड़े और तुम्बे खड़ाऊ पर न जाना । तुम्हारे धर्म वेदविरुद्ध नहीं है ॥ (जयध्वनि)

प्रियवर कोई धूर्त्त तो निराकारवादिनी एक दो श्रुति कहकर आकार कल्पना उसके विरुद्ध कहते हैं ऐसी बातकी समालोचना हम दूसरे प्रश्नपर कर आये हैं । कोई बड़ा माहात्म्य कह पीछे इतना जोड़ देते हैं कि ऐसे परमात्माका पत्थरमें पूजना तो उसकी और निन्दा करनी है अतः वेदविरुद्ध है इसको आप स्वयं समझ सकते हैं कि वेदविरुद्ध क्या हुआ और मूर्त्तिपूजामें भगवन्निन्दा हुई कि नहीं यह हम कई एक उपप्रश्नों की समालोचनामें कहेंगे ॥

कोई कोई न मालूम कहांसे एक वाक्य उठालाते हैं कि "प्रतिमास्वल्पबुद्धीनाम्" और कहते हैं लो बाबा यह निषेध है अतः प्रतिमापूजन वेदविरुद्ध है न करो न करो ॥ परन्तु महाशय ! यह वाक्य किसी वेद का नहीं है ॥ भला और भी किसी मनु याज्ञवल्क्य आदिसे होता तो हम इस वाक्यको शिर पर रखते पर इन ग्रन्थोंमें भी पता नहीं । अच्छा इस वाक्य को ग्राह्य भी समझ लीजिये तो इसका अर्थ तो इतना ही है कि "अल्पबुद्धियों का प्रतिमाओंमें" बस 'कहिये कि केन लग्नम्' !

अच्छा अब यदि इन पर अनुग्रह करके यह भी मान लियाजाय जो कि "प्रतिमाओंमें अल्पबुद्धिओंका प्रेम होता है" तो ठीक ही है बच्चे बालक जो खिलौने ले लेके खेलते हैं उनका उन प्रतिमाओंमें प्रेम होता है और बुद्धिमानों का तो परमात्मा में प्रेम है। उसी प्रेमको कृतार्थ करनेकी द्वारभूत भी प्रतिमा हो कि नहीं इसकी तो कोई चर्चा नहीं है ।

यदि उछल कूद के दांत निकाल जमीन पर हाथ पटक कहो कि नहीं "अल्पबुद्धि प्रतिमा पूजन करते हैं" यह अर्थ है तो बाबा यह अर्थ हो तो भी निषेध तो

नहीं आया प्रत्युत अल्पबुद्धियों के लिये विधि ही आई अब देखिये अल्पबुद्धि कौन है और कौन नहीं ? तब फिर यही सिद्ध होगा कि जो योगासन कर समाधि-द्वारा जीवन्मुक्ति का लाभ कर सक्ते हैं उनके अति-रिक्त सब अल्पबुद्धि ही हैं और उनको प्रतिमापूजन आवश्यक है ॥ बस हजार सिर पटको यह वाक्य बे ठिकाने का हो चाहे ठिकाने का सिखलाया गवाह कहां तक मुकद्दमा सुधारैगा, यह भी हमारी बात पुष्ट कर गया ।

अब कालिकालके वैदिक दयानन्दसरस्वती जीका भी यत्न देखिये उनका सत्यार्थप्रकाश तीसरा संस्करण पृष्ठ ३१० सामने निकाल के रखिंये और देखिये ऐसे कट्टर वैदिक का तो लेख है कि गालपर मच्छर काट ता रहे तो जब तक वेदमन्त्र उस के उडाने की आज्ञा न दे तब तक न उडावे और बच्चों की सी बात !

पहले तो आप नाम स्मरण पर रुष्ट भये और प्र-श्नोत्तर के ढंग से यों लिखा ।

स० प्र०—११ वाँ समुल्लास "नामस्मरण मात्र से कुछ भी फल नहीं होता जैसा कि मिश्री मिश्री कहने में मुँह मीठा और नीब नीब कहने कडुआ

नहीं होता किन्तु जीभसे चाखने ही से मीठा वा कड़ुवापन जाना जाता है। (प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है? जो सर्वत्र पुराणों में नाम स्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है? (उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं। जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति झूठी हैं (प्रश्न) हमारी कैसी रीति है? (उत्तर) वेदविरुद्ध (प्रश्न) भला अब आप हम को वेदोक्त नाम स्मरण की रीति बतलाइये? (उत्तर) नाम स्मरण इस प्रकार का करना चाहिये जैसे "न्यायकारी ईश्वर का एक नाम है इस नामसे जो इस का अर्थ है कि जैसे पक्षपातरहित होकर परमात्मा सब का यथावत् न्याय करता है वैसे उस को ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना अन्याय कभी न करना इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सक्ता है" वाह रे कलिके वैदिक! मुकुन्द हरि ये नाम तो इनें खाने दौड़ते हैं और "न्यायकारी" इने वैदिक नाम मिला है और अपने मन के बनाये शब्द महामन्त्र होगये। भला इस ठिकाने सरस्वती जीको यह भी तो कहना आवश्यक था कि किस वेद के किस मन्त्रमें "न्यायकारी" ईश्वर

का नाम मिला है। और उनके बड़े शौनके शड़के वाली मिश्री से तो मुँह मीठा नहीं होता फिर न्याय-कारी कहने ही से क्या ईश्वर उन के विषय में न्याय करेंगे नहीं तो अन्याय करेंगे ? फिर स्वामीजी ने यह भी न सोचा कि मिश्री मिरचा कहने से तो मुँ-ह मीठा तीता नहीं होता पर निम्बू निंबू चूक चूक इमली इमली कहने से मुँह खट्टा क्यों हो जाता है और दांतोंसे लवाध क्यों छटने लगता है ? प्रियवर ! जब एक छोटेसे पदार्थ के नाम में यह सामर्थ्य देखते हैं तो जगदीश्वर के नाम में यदि कोई अपूर्व सामर्थ्य हो तो क्या आश्चर्य है।

यदि भगवन्नाम का माहात्म्य वेद का लिलक्षयि-शित न होता तो, "ओमित्ये तदक्षरमुद्गीयमुपा-सीत" इत्यादि स्पष्टरूप से वेद क्या कहता ? और "तस्य वाचकः प्रणवः" "तज्जपस्तदर्थभावनम्" इन सूत्रों से भगवान् पतञ्जलि भी यही बल क्यों देते कि ओङ्कार भगवद्वाचक है इस लिये उस का जप करना और तदर्थ स्वरूप भगवान् का भावन करना ? और फिर योगशास्त्रमें भगवान् पतञ्जलि इस भगवन्नाम जप का स्वयं फल भी क्या कहते कि "ततः प्रत्यक्-

चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" सरस्वतीजी की गणित बाह्यविद्या आदि का तो किञ्चित् इशारा मात्र मिलने से समूचा वह प्रकरण वेदोक्त मालूम होता है और भक्ति सम्बन्धी बात में विशेषोक्त होने से भी सरस्वतीजी के मस्तिष्क का दाह नहीं मिटता। उन को अभी भगवन्नामस्मरण का प्रकरण बाकी ही है। यजुर्वेद की "नमस्ते" अध्याय में सैकड़ों नामसे भगवान् की स्तुति है क्या इस से भी बढ के कोई नामस्मरण का निर्देश चाहिये? भला स० प्र० ३ य संस्करण-पृ० १२ तो देखिये "अथ ओङ्कारार्थः (वि) उपसर्गपूर्वक राजृदीप्तौ इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से विराट् शब्द सिद्ध होता है" इस का अर्थ या तो दयानन्द जी ही समझे होंगे और या उन के प्रिय-शिष्य लोग ही समझते होंगे जो स्पंज की भांति दया-नन्द जी के पेट में का पिये बैठे हैं। इन लोगों के पक्के शिष्य होने में कोई सन्देह नहीं क्योंकि जैसा दया-नन्दजी का शंखध्वनि बोध था जिस से वे 'कपाटान् वध्नीहि' लिखते थे वैसाही इन का भी डफोलशंख बोध है कि सत्यार्थ प्र० के तीसरे संस्करण को तीसरी

शुधाई में भी लिखते हैं "ईश्वरभिन्नस्याः प्रकृतेरुपादानकारणत्वम्[१]" ❀ (जयध्वनि)

अच्छा अब सत्यार्थप्रकाश के जन्मदाता महाशय आगे बढके मूर्तिपूजाका निषेध वेदमें कैसा दिखलाते हैं सो भी तो सुन लीजिये यही तो हमारा प्रधान वक्तव्य है । स० प्र० पृष्ठ ३१२ "अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ संभूत्याꣳ रताः ॥ अ० ४० मंत्र ॥ ९ ॥

न नस्य प्रातिमा अस्ति । यजु० ॥ ३२ ॥ मं० ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ २ ॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ३ ॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।

---

१ संस्कृतभाषा के ज्ञान में दयानन्द जी कैसे चौपटानन्द थे यह जिन्हें भली भांति समझना हो वे अबोध "निवारण" मँगा के पढैं । दाम ᠆) डांक)॥ (पता व्यासप्रेस—भागलपुर)

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते॥ ४॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते५ केनोपनि०।

पर इनमें किसी वाक्य का भी यह अर्थ नहीं निकलता कि मूर्तिद्वारा परमात्मा का आराधन नहीं करना।

देखिये प्रथमवाक्य ने (उनके अर्थानुसार भी) ब्रह्मोपासन में द्वारविशेष की निन्दा अथवा स्तुति नहीं की है। प्रत्युत जो ब्रह्मके बदले प्रकृति अथवा लौकिक पदार्थों ही में रहजाते हैं उनकी निन्दा है। (यदि द्वारभूत पदार्थ भी निन्दा विषय समझा जाता तो स्वामीजी का स्वीकृत प्रणवादि भी न ठहरता) मूर्तिपूजक लोग उसी ब्रह्मके उपासक हैं दूसरे के नहीं। इसलिये प्रथमनिषेध अकिंचित्कर। हुआ। अन्त के पांच वाक्य उपनिषद् के हैं। देखिये स्वर तो सरस्वती जी केन, कठ, मुण्ड, माण्डूक्य इत्यादि सब उपनिषदों को प्रमाण मानते हैं और यदि हम लोग किसी उपनिषद् तथा ब्राह्मण भाग का बचन कहें तो झुलस जाते हैं और सौ तरह की चौं चौं मचाते हैं। पर प्रत्यक्ष देखिये इन वाक्यों में उपा-

सन। कैसे करना यह चर्चा ही नहीं है। यहां तो ब्रह्म के समझने की बात है जो कोई कुछ भी संस्कृत जानता है वह समझ सकता है कि, "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि" इसका क्या अर्थ है इसका अर्थ है 'तू उसीको ब्रह्म समझ' तो कहिये तो मूर्तिपूजक लोग क्या दूसरे को ब्रह्म समझे बैठे हैं? हां सरस्वती की चालाकी तो देखिये! इतनी बात आप भी समझे बैठे थे इसी लिये इन बचनों का अर्थ लिखते हैं "तू उसीको ब्रह्म जान और उसीकी उपासना कर और उसमें भिन्न सूर्य, विद्युत्, और अग्नि आदि जड पदार्थ हैं उन की उपासना मत कर" छिः धिक् ऐसे जगत् के ठगने वाले वञ्चक को!! जो स्वयं जानता है कि वाक्यार्थ क्या है पर संस्कृत के अनभिज्ञ लोगों को बहकाने की जोडतोड कर दूसरी ही बात झलकाता है। तैत्तिरीय उपनिषद् का बचन है "यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि" (निर्दोष काम करने दूसरे नहीं) सरस्वंती जी ने यही निर्दोष काम समझा क्या? सरस्वती जी ने स्वयं लिखा है (असत्यामिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यम्) (झूंठ से मिले हुए सत्य का दूर ही से त्याग करना) लो बाबा दया-

नन्द जी का सत्यार्थप्रकाश भी उठाके दूर फेंको उस में झूठ मनभर है सच सेरभर भी कदाचित् ही हो॥

बहुतों का पेट फूलता होगा कि बीचवाले एक बचन की समालोचना क्यों नहीं की जाती? सुनो सुनो बाबा उसे भी सुनलो यह बचन है "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इसी वाक्य से दयानन्दजी और दयानन्दीजी मूर्तिपूजा को वेदविरुद्ध कहते हैं। देखिये तो क्या इस वाक्य का यह अर्थ है कि मूर्तिपूजा नहीं करना? वचन तो इतना ही कहता है कि (उस की प्रतिमा नहीं है) तो क्या ज्ञेयांश का विशेषण उपासना प्रकार में बाधा डालैगा! उसकी प्रतिमा नहीं है! मत हो! हम उसी अप्रतिमकी प्रतिमा द्वारा उपासना करना चाहते हैं तो क्या इसका भी निषेध इस श्रुतिका विषय है? हम उस को निराकार कह के साकार द्वारा पूजते हैं, अमूर्त्त कहके मूर्ति द्वारा पूजते हैं, सर्वव्यापक कह के एकदेश द्वारा पूजते हैं, तो फिर यदि इस श्रुति का यही अर्थ हो कि उस की प्रतिमा अर्थात् मूर्ति नहीं है तो भी तो यह लक्ष्यनिरूपण हुआ इससे द्वारभूत पदार्थों की तो कथा ही नहीं है।

भला एक बेर बिचार के भी तो देखिये कि यहां प्रतिमा का क्या अर्थ है? प्रतिमाशब्द के बटखडा,

तराजू, गज, परवाना, आदि अर्थ भी हो सक्ते हैं; क्योंकि मा धातु का प्रयोग माप करने के अर्थ में प्रायः देखा जाता है। यदि उनमें से कोई अर्थ हो तो उससे मूर्तिपूजा का निषेध नहीं होता इस कारण उन अर्थों की विवेचना हम अनावश्यक समझते हैं।

प्रतिमाशब्द का अर्थ जैसा मूर्त्ति होता है वैसे ही उपमा भी होता है सो अब देखना है कि यहां क्या है।

प्रतिमाशब्द का अर्थ उपमा है इस में प्रमाण की तो आवश्यकता न थी क्योंकि यह शब्द संस्कृत जानने वाले को अनायास सिद्ध है तो भी अति प्राचीन ग्रन्थ रामायण महाभारत तक यह पदे पदे बोला जाता है सो सुन लीजिये।

वाल्मीकिरामायण वनवासप्रकरण "स तन्नियोगात् खलु सत्यवादी सत्यां प्रतिज्ञां नृप पालयंस्ते। इतो महात्मा वनमेव रामो गतः सुखान्यप्रतिमानि हित्वा" *यहां यही तात्पर्य है कि जिन की तुलना नहीं* ऐसे अनुपम सुखोंका त्याग कर रामचन्द्र वन गये। यहां यह अर्थ कभी नहीं हो सकता कि रामचन्द्र ऐसे सुखों को छोड़ के वनगये जिन सुखों की मूर्ति न बन सकै।

यों ही महाभारत में नलप्रकरणमें "रूपेणाप्रतिमो भुवि" यह राजा नल का विशेषण है । अवश्य ही इसका यही अर्थ होसक्ता है कि, राजा नल ऐसे रूपवान् थे कि उनके रूप का सादृश्य कहीं नहीं पाया जाता था। यदि कहिये उनकी मूर्ति नहीं थी तो यह तो "कर्णस्पर्शे कटिचालनम्" हुआ। क्योंकि रूपवान् ही की तो सूरतें औरतस्वीरें होती हैं। यह नलचरित्र में भी प्रसिद्ध है कि "इति स्म सा कारुवरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यमैक्षत" अर्थात् नल और दमयन्ती दोनोंकी तस्वीर लिखी जातीथी और दमयन्ती उसमें नल के साथ अपना प्रेम देखती थी।

मंत्र यों है "न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः" उस की प्रतिमा नहीं है जिस का बड़ा यश है। (अथवा जिसका नाम बडा है और यश बड़ा है। यथाश्रुत ही अर्थ लिखा जाता है। क्योंकि भाष्यकारों को तो दयानन्दीजी मानेहींगे नहीं तब शब्दों के देखने से जो सुगम अर्थ लभ्य है वह प्रकरणके अनुकूल और अबाधित हो तो वही ग्राह्य होगा) अब यह आप लोग सोच लें कि बड़े यशस्वी की मूर्ति नहीं बन सक्ती कि बडे यशस्वीके लिये यह कहना शोभित होता

है कि आप ऐसा दूसरा नहीं ! यदि मूर्ति कल्पना ही यशस्वी के यश की बाधिका हो तब तो जितने राजा महाराजा लाट पण्डित और स्वामी दयानन्दसरस्वती तक की मूर्तियां बनी हैं वे दुष्कीर्ति ही के पुतेल समझे जांयगे ।

यदि इस वचन के प्रकरण को भली भांति देखिये तो स्वयं आप लोग समझियेगा कि यहां यही अर्थ बेद के तात्पर्य विषय है ।

यजुर्वेद संहिता ३१ वीं अध्याय में 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मन्त्र से सर्वशक्तिमत्ता व्यापकता और रूपवत्ता का वर्णन किया, 'पुरुष एव' इस मन्त्र में जगत् से अभिन्न उसी पुरुषोत्तम को कहा 'ततो विराट्' इस मन्त्र से हमको विराट् पुरुष का भी कारण कहा, फिर कई मन्त्र से सृष्टि तन्मूलक है इसका उपपादन किया । फिर 'वेदाहमेतम्' इस मन्त्र से उसीके ज्ञानका माहात्म्य कहा, और देवेभ्यः' इस मन्त्र से उनका माहात्म्य कह उनके आगे प्रणत होना दिखलाया, (अब ३२ ईं अध्याय चली) 'तदेव' इस मन्त्र में यह दिखलाया कि वही अग्नि है वही सूर्य्य है वही वायु है वही चन्द्र है अर्थात्

सर्व स्वरूप वही है, तब 'सर्वे निमेषा' इस मन्त्र से उसकी अपरिच्छिन्नता और व्यापकता कही, तब "न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः" इस मन्त्र से उसी की अनुपमता दिखलाई। इस प्रकरण से हमारे श्रोता लोग स्पष्ट समझ जांयगे कि जिसका इतना बडा यश है उसके सदृश दूसरा नहीं यही इस मंत्रका तात्पर्य होसक्ता है दूसरा कदापि नहीं हो सकता ॥

अब दयानन्द और दायानन्द दोनों ने जितनी सामग्री मार्तिपूजा के वेदाविरुद्ध होने की दिखलाई थी वे सब कोरी दांत खटाखट सिद्धि हुई हों तो हमारी बात मानिये नहीं तो दक्षिण उत्तर दोनों सडकें खुली हैं मन हो उधर जाइये। (करतलध्वनि जयध्वनि)

अब इस प्रश्न की भी मीमांसा कर लीजिये कि,—

८ " प्रमाण क्या ? "

क्या इस प्रश्न का अर्थ है कि मूर्तिपूजा होने में प्रमाण क्या ? तब तो हम कहेंगे कि प्रत्यक्ष !! जब चाहे तब किसी मन्दिर में चले जाइये और प्रत्यक्ष कर लीजिये कि मूर्तिपूजा होती है। पर

नहीं, भले ही पूछने वाले पूछ न सकें पर प्रश्नकर्त्ताओं का भीतरी तात्पर्य यही है कि "मूर्तिपूजा करनी चाहिये इसमें प्रमाण क्या" यों सही, पर जब हम पहिले अनेक प्रश्नों के उत्तरों में, बात बात पर यह दिखलाते आये हैं कि मूर्तिपूजा बिना साक्षात् उडके इस ब्रह्म में लीन होना असम्भव सा है, और जो बिना मूर्तिपूजा परमहंस हो सकै उससे हम कुछ नहीं कहते पर औरों को आवश्यक है; इस बात को भी युक्तिसिद्ध कर चुके हैं कि स्वच्छ हृदयमें मूर्तिपूजा करते देख भगवान् प्रसन्न ही होंगे। यह भी दिखला चुके हैं कि निर्गुण मार्ग की अपेक्षा यह सहज और शीघ्र तथा निश्चित लाभदायक है यह भी समझा चुके हैं कि बडे बडे कट्टर निर्गुनियों को भी हार के मूर्तिपूजा और सगुणोपासना ही की शरण लेनी पडती है तो अब क्या प्रमाण चाहते हैं? आप तो बडे युक्तिवादी हैं ग्रंथ प्रमाण वाले तो हम लोग हैं । इतनी युक्तियों से कितने प्रबल अनुमान होसक्ते हैं फिर क्या आप अनुमान प्रमाण के स्वीकार करने वाले नहीं है?

कौन सा ऐसा मत है जिसने विश्वास को अपने मूलसोपान में नहीं रखा है? क्रिश्चन लोग भी यकीन

ही यकीन बकते हैं। मुसलमान लोग भी ईमान ही पर निर्भर हैं तब आप प्रश्नकर्त्ताओं को भी हम बेयकीन और बेईमान कब कहसक्के हैं? और जब "बिश्वासः फलदायकः" सिद्धान्त हुआ तौ आचार्योंके वचनोंपर विश्वास, गुरु के वाक्य पर विश्वास, सदाचार पर, तथा सम्प्रदायमर्यादा पर विश्वास करके यदि मूर्तिपूजन में फल होहीगा यह "विश्वासः फलदायकः" मानने वालों को व्याप्तिग्रह स्वयं है तब अनुमान ही प्रमाण है॥

फिर सदाचार किस प्रमाणसे कम है? "वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः" ऐसा आचार्यों का वचन है। यद्यपि हमने तो वेद, स्मृति, सदाचार, आत्मप्रेम सभी मूर्तिपूजा पर दिखलाये पर इन में सदाचार कैसा प्रबल है जिस पर जगत् के सब व्यवहार निर्भर हैं। भारतवर्ष के लिये क्या मूर्तिपूजा में आचार ढूंढना है भारतवर्ष में तो पुराने से पुराने ग्रन्थ और पुराने से पुराने मन्दिर इस के साक्षी खड़े हैं॥ कोई कोई छोकड़े ऐसे ठिकाने पूछ उठते हैं कि आचार क्या साहब किसी देश में बुरी ही परिपाटी चलरही हो तो? पर यह अल्पज्ञों ही का प्रश्न है क्योंकि

हम तो सदाचारको अनुसरणीय कहते हैं कदाचारको नहीं। अच्छे विद्वान् महात्मा सदसद्विवेकियोंका आचार ग्राह्य है । मुंडाचिरवा, कपरफोरवा, चोर, जुवारियोंका आचार सदाचार नहीं कहलाता और उसको साध्यके साधन में हम प्रमाण भी नहीं कहते ।

वेदके अनुक्तांश में स्मृतिका वेदके तुल्य सम्मान है और वेद स्मृति दोनोंके अनुक्त विषय में सदाचार भी वेद के तुल्य है। पर निषिद्ध में नहीं ! सो बुरी चालें तो निषिद्ध कोटि में जा पडैंगी उन में प्रामाण्य नहीं पर मूर्तिपूजाके यदि थोड़े इशारे वेदमें मिलैं और पूरी आनुपूर्वी सदाचार में पाई जाय और इसका निषेध अथवा बुराई न मिलै तो और क्या प्रमाण चाहते हैं ?

सदाचार का लक्षण मनु भगवान् यों करते हैं "सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ तस्मिन् देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार-उच्यते" ॥ ठीक इसी प्रकार के सदाचार से मूर्तिपूजा आदृत है और मूर्तिपूजा ही क्या तीर्थयात्रादि भी यहां के चिरन्तन सदाचार में हैं ।

मङ्गलाचरण के प्रकरण में कपिल महर्षि ने स्वयं लिखा है "मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात्" औरों की तो हम नहीं कहते पर हमारे समाजी लोग तो सूत्रों को प्रमाण मानते हैं वे देखें कि कपिलाचार्य ने शिष्टाचार को कितनी प्रतिष्ठा दी है और बडे बड़े टीकाकार और भाष्यकारों की तो यह राय है कि समूचा वेद नहीं मिलता है। यहां तक कि "सहस्रशाखं साम" प्रसिद्ध है सो सहस्र शाखाओं में केवल ३ शाखाएं मिलती हैं। वे आचार्य लोग कहते हैं कि जो सदाचार में परिपाटी मिले और श्रुति न मिले तो समझ लेना कि इस की श्रुति खो गई है। इसी लिये मङ्गलके विषयमें बहुत प्रामाणिकोंकी सम्मतियाँहैं कि"मङ्गलमाचरणीयं सदाचारानुमितश्रुतिबोधितकर्त्तव्यताकत्वात्" अर्थात् मङ्गल अवश्य करना चाहिये क्योंकि सदाचार से अनुमित श्रुति से यह विदित है सदाचार की प्रशंसा मनु महर्षि करते हैं,—"येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते," ये ऐसी बातें नहीं हैं कि जो चाहे सो विना सोचे योंहीं मुसकिरा के उड़ादे, ये गंभीर सोचने की बातें हैं,। कहिये तो क्या

जो जो सदाचार में चालें चल पड़ी हैं वे सभी यदि आनुपूर्वी से धर्मके मूल ग्रन्थोंमें लिखी मिलें तभी की जांय नहीं तो नहीं ऐसा आप का नियम है क्या ? यदि ऐसा न हो तो क्यों दाँतखटा खट में पड़े हैं ? और यदि ऐसा ही दृढ नियम हो तो अपनी ही रात दिन की चर्चा वेदसे निकालिये तो । हम यह बात प्रसन्नता पूर्वक आप लोगों को सुनाना चाहते हैं कि दयानन्दजी भी म० प्र० पृ० ६०५ में अपनी सदाचार की पाबन्दी पर कुछ जोर दे गये हैं।

भले ही टिड्ढाणञ् को जान लेने वाले पण्डितों को न अच्छा लगे पर यह भी सर्व साधारण को समझ लेना चाहिये कि मूर्तिपूजा प्रकृतिसिद्ध है और मानवस्वभाव के अनुसार है। इनदिनों बाह्यविद्या से यह भलीभांति सिद्ध किया जा चुका है कि मनुष्यके मस्तिष्क में यह सामर्थ्य ही नहीं है कि निर्गुणका चिन्तन कर सकै तब स्वविचार विषय में उसका तादात्म्याध्यास करता जाय फिर धीरे धीरे वितर्क विचार छोड़ता जाय तो भगवन्मय हो जायगा। इसी स्वाभाविक उलेल के निकालने को पूर्वकाल में समूचा संसार मूर्तिपूजा करता था। अभी तक द्वीपान्तर में बड़े बड़े

मूर्तिपूजाके चिह्नस्वरूप प्रकाण्ड मन्दिर पाये जाते हैं द्वीपान्तरनिवासी भी अग्निमें कुछ हवन कर उसे ईश्वरार्पण समझते थे। पारसी लोग जो जिन्दावस्ताके पाबन्द हैं वे तो जगत्प्रसिद्ध अग्निपूजक हैं। क्रिश्चनों में कैथेलिक तो प्रसिद्ध मूर्तिपूजक हैं। यदि भगवत्तोषार्थ मूर्तिपूजाको प्रकृतिसिद्ध न मानिये तो कहिये संसार भर को कौन सिखलाने गया था कि भगवत्प्राप्ति मूर्तिपूजा से होगी? मुसल्मान लोग मूर्तिपूजाके विरुद्ध हैं पर उनके इतने हल्ले धूमसे मूर्तिपूजा रोकने ही से जान पड़ता है कि मूर्तिपूजा प्रकृति सिद्ध है उसे वे किसी किसी प्रकार मारके बैठे हैं। यह भी सुना है कि किसी समय इन लोगों में तस्वीर मात्र लिखना मना था पर उस दिलकी उलेल को ये किस पर निकालते और तरफ वह चित्तका प्रवाह न बहने पाया तो उनने अक्षरों ही की लिखावट की तस्वीर बनाली और अक्षरों ही को इतने ढंगोंसे लिखने लगे कि सुलेख की एक स्वतन्त्र विद्या निकलगई, वर्तमान समय के और और क्रिश्चन लोग बड़ा पित्त मारके बैठे हैं पर ईश्वर की साकारता उनके भी नेत्रों पर झलक ही जाती है। देखिये उनकै धर्मग्रन्थों में यों लिखा है।

"13. And in the midst of the seven candlesticks one like unto the Son of man, clothed with a garment down to the foot, and girt about the paps with golden girdle. 14. His head and, his hair were white like wool, as white as snow; and his eyes were as a flame of fire; 15. And his feet like unto fine brass, as if they burned in a furnace and his voice as the sound of many waters. 17, and when I saw him, I fell at his feet as dead. And he laid his right hand upon me, saying unto me, Fear not; I am the first and the last, 18. I am he that liveth and was dead; and behold I am alive for ever &c."

Revelation.

"9. I beheld till the thrones were cast down and the Ancient of days did sit, whose garment was white as snow and the hair of his head like the pure wool; his throne was like the firy flame and his wheels as burning fire &c."

Daniel.

अब उन लोगों पर दृष्टि फेरिये जो जघन्य हैं और वन्य हैं; वे लोग भी कभी किसी पहाड़ही के टोंग को पूजते हैं और कभी किसी पेड़ ही पर सिन्दूर का टीका लगा गाजे बाजेसे उसके द्वारा ईश्वरका तोष करते हैं। अब कहिये संसारभरको किसने चेला किया? अब जो मूर्तिपूजाके विरोधी हैं वे इस प्रकृतिसिद्ध भक्तिमार्ग को बलात् दबाके स्वतन्त्र खड़े होते हैं और मनुष्य की मनुष्यता इसमें है कि प्रकृतिसिद्ध भावोंको सुनियमोंसे सुन्दर सुलभ और सफल करे। जैसे प्रकृतिसिद्ध रिरंसाको विवाहादि नियमोंमें

बांधा, प्रकृतिसिद्ध गानेच्छाको सुर लयमें कसा, वैसे ही विशेष बुद्धिमानों ने इस भक्ति के प्रकृतिसिद्ध प्रवाह को भी विशेष नियमबद्ध किया और सम्प्रदायों की ध्वजा उडगई।

दयानन्दजी इस स्वभावसिद्ध बात को क्यों न रोकेंगे उनने तो प्रकृतिविरुद्ध कामों का ठीका ही उठायाहै। दयानन्दजी अपने स० प्र० में लिख गये हैं "प्रसूता का दूध छः दिनतक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे......दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधी का लेप करे जिस से दूध स्रावित न हो ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है।" (तीसरा संस्करण पृष्ठ २८ देख लीजिये) कहिये तो! जगत् जानता है कि परमात्मा जिस बालक को गर्भ में सृजते हैं उसी के लिये उस के जन्म के पूर्व से अमृत के कलश भरते हैं जब तक बालक का जन्म न हो तब तक उसमें भी अपूर्णता ही रहती है और इधर बालक उत्पन्न हुआ और उधर माँ का दूध आप चूने लगता है। इधर बालक भी स्तन मुख के पास आते ही बिना सिखाये चूसने लगता है, उधर मा भी एक दिन न पिलावे तो उस की छाती भारी

हो जाय और उसे दूध पिलाने से कोई रोके तो रो रो के प्राण दे। इस प्रकृतिसिद्ध बात को रोकने के लिये सरस्वतीजी तुम्बा फटकारे तैयार हैं। बस स्त्री के कुच लटक न जांय कसे रहैं तब स्वामीजी का पेट भरे। स्तनन्धय माता का स्तन न पावे तो न पावे पर यौवन बना रहे! वाह यह तो यौवनाजीविनी वेश्याओं का स्वभाव कुलवधुओं को सिखलाया जाने लगा। अथवा ठीक है स्वामी ही जी तो हैं यह सोचा होगा कि यदि यौवन की शोभा ही न रहैगी तो ११ पति कैसे होंगे और कुछ दिन को पति विदेश जाय तो भी चट दूसरे पति से नियोग करना कैसे होगा? भला कुछ तो बांकी अदा रहै जिस पर लोग रीझैं। (जयध्वनि)

हम लोग तो तीन ही चार प्रमाण मान सब कार्य साधन करते हैं पर स्वामी जी तो आठ प्रमाण मानने वाले हैं, जैसा उनने पृष्ठ६०५ स० प्र० में लिखा है। परन्तु बडे ही आश्चर्य की बात है कि बिचारे ने आठ आठ प्रमाण का बोझा सिर पर उठाया तो भी मूर्तिपूजा की सिद्धि में असमर्थ ही रहे। आठ प्रमाण ये हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव अभाव ॥

पहले अनुमान अनेक प्रकार का दिखला चुके हैं जिस को संस्कृत रीति से वा अंगरेजी रीतिसे आप लोग क्रमबद्ध बैठालेंगे अथवा पूछियेगा तो हम भी कहदेंगे। ऐतिह्य प्रमाण भी इसमें स्पष्ट ही है क्योंकि ऐतिह्य वही है जिस्में चिरकाल से लोगों का मानना मूलभूमि है, जैसे किसी ग्राम में किसी पेड़के लिये चिरकाल से लोग परम्परा से यह मानते आवें कि इस पर भूत रहता है तो फिर इसी हल्ले को प्रमाण मान उस वृक्ष पर भूत का रहना मानना इस प्रकार के ऐतिह्य को भी यदि दयानन्दी लोग मानते हैं तो फिर मूर्त्तिपूजा में क्या सन्देह रहा ? इसमें तो चिरकालसे समस्त पृथ्वी साक्षी है। ऐसे ही सम्भव और अर्थापत्ति से भी यह प्रमित है पर श्रोताओं को नीरस होगा इस लिये इस का विचार यहाँ छोड़ देते हैं पर पूछने पर अवश्य कहेंगे।

अब शब्दप्रमाण पर दृष्टि दीजिये यह प्रमाण सबसे बड़ा होता है यद्यपि प्रत्यक्ष की बडी प्रतिष्ठा है क्योंकि यह सब को स्वीकृत है तो भी एक तो प्रत्यक्षादि सामग्री रहते भी भिन्न विषयक शब्द सामग्री हो तो प्रत्यक्षादि धरे ही रहते हैं और शाब्दबोध हो

ही जाता है और अन्तःकरण की वृत्तियों को अपनी ही ओर खींच लेता है ।

मानिये कि आप किसी अपूर्व बाग में गये हैं और फुहारों को देखरहे हैं और उन में किधर से पानी आता है इस विषय पर अनुमान भी कर रहे हैं पर तबतक किसी ने दौड़के कहा कि भागिये पिंजड़ेसे बाघ निकल आया । बस यह सुनते ही प्रत्यक्ष और अनुमान धरे ही रह जांयगे और आपको उस शब्दके आधीन हो चहुंकही उठना पड़ैगा, ऐसा भारी शब्द प्रमाण है ।

यह शब्दही का माहात्म्य है कि उस पर बोझा दे वैद्य लोग अपने प्रेमपात्र को भी विष खिलाते हैं और माता पिता अपने बालकों पर भी डाक्टरों की छुरी फिरवाते हैं । और मत तो जितने प्रचलित हैं सो किसी न किसी शब्दही को लेकर चले हैं ।

प्रमाणस्वरूप शब्दका लक्षण आचार्योंने कहा है कि "आप्तवाक्यं शब्दः" इस को कोई तो कहते हैं कि "आप्तं वाक्यम्" अर्थात् निर्दोष वाक्य और कोई कहते हैं "आप्तानां वाक्यम्" अर्थात् यथार्थ वक्ताओं का वाक्य । इन पर बहुत अवच्छेदकता प्रकारता

और निवेश प्रवेश सुनने हों तो उन शास्त्रियोंके पास जाइये जिनने यह भी रीतिसे न सीखा कि धोती कैसे पहिरना और पत्रिका और खरोंकी धनमें जिन्हें यह भी विदित नहीं कि सूर्य पच्छिम ऊगे कि दक्षिण पर इन फांकियों ही पर मर मिटे। हमें तो पण्डिताई नहीं दिखलाना है पर जहाँ तक श्रान्त और श्रोता लोग समझ सकें उतने ही के भीतर भीतर समझाना है।

तो अब भारतवर्षीय आचार्योंके वचन तथा पुराणादि के वचनों को देखिये तो वे निर्दोषवाक्य-स्वरूप तो हुई हैं क्योंकि योग्यताकांक्षादि का न होना ही वाक्य दोष समझा है, सो उन में नहीं है, और आप्तवाक्य का दूसरा अर्थ लें तो भी ठीक ही है क्योंकि जब तक उनको कोई मिथ्याभाषी न ठहरा सके तब तक उन्हें सत्यभाषी मानना ही होगा। इस में यह कुतर्क न करना कि जब तक सत्यभाषिता न सिद्ध की जाय तब तक हम मिथ्याभाषी ही समझेंगे क्योंकि शब्दप्रामाण्यके विषयमें यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है कि जो मिथ्याभाषी न सिद्ध हो उसका वचन शाब्दबोधजनक है, देखिये कोई पथिक जाता

जाता दूर पथ भूल जाय तो किसी बालक से भी पूछ लेता है कि अमुक ग्राम में जाने का कौन सा पथ है और उस बालकका वचन भी प्रमाणमान चलता है चाहे वह बालक सचमुच झूठ ही क्यों न बोला हो पर जब तक सुनने वाले को झूठ का धोखा न होगा तब तक वह सचही समझेगा॥ इत्यादि सहस्रों लाखों रात दिनके उदाहरणोंसे यह बात सिद्ध है कि कहने वाले की मिथ्याभाषिता जब तक सिद्ध न हो तब-तक वह सत्यभाषी समझा जाता है।

फिर हमारे आचार्योंमें तो मिथ्या भाषण की आ-शङ्का भी नहीं हो सक्ती क्योंकि मिथ्या भाषण तो वह करसक्ता है जो मूर्ख हो, पागल हो, अथवा मिथ्या भाषण में कुछ स्वार्थसाधक हो। पर हमारे आचार्यों को मूर्ख कौन मूर्ख कह सक्ता है जिन की विद्वत्ताकी प्रशंसामें सारे युरोप और अमेरिका की लेखनी समाप्त होती है, और वैसे ही पागल भी कोई निरा पागल ही कहसक्ता है बुद्धिमान् लोग तो उनके ग्रन्थ देख टकटकी बांध पागल से हो जाते हैं।

अब रहा उन्हें स्वार्थसाधक कहना सो हां ऐसे ऐसे लोग उन्हें स्वार्थसाधक कहेंगे जो भ्रष्ट हैं अथवा

हीन जाति हैं। उनके कथन भी इस ढङ्गके होते हैं कि ये धर्मशास्त्र आदि के बनानेवाले ब्राह्मण थे और उनने केवल मतलबीपनसे "ब्राह्मणों ही का बात बात में अधिक मान रखा है और बात बात में यही कहते हैं कि ब्राह्मण को पूजो और ब्राह्मण को दो. ब्राह्मणों ही की प्रशंसा की" जो अधम हो ब्राह्मणों से डाह रखते हैं उनके दग्ध नेत्रोंसे यह नहीं देख पड़ता कि यदि ब्राह्मणोंको स्वार्थ साधन ही करना होता तो ब्राह्मणों हीं को आचार का इतना अधिक टण्टा क्यों लगाते? बात बातमें ब्राह्मण को बड़े बड़े प्रायश्चित्त और, और और वर्णों को स्वच्छन्द बिहार से भी छोटे प्रायश्चित्त ? यह क्यों होता! ब्राह्मण का जीवन ब्रह्मचर्य से भिक्षु, आश्रम तक तलवार के धार पर धावन ऐसा कठिन है, जिस भीख मांगने के नाम से लोगों का रोमोत्कम्प होता है, जिस शब्द को किसी से कह दीदिये कि "जा तुझे भीख मांगना पड़ैगा" तो वह उसे शाप समझैगा और भरसक लड़ने खड़ा हो जायगा, जिस आपत्ति से भीत हो लोग सदा श्राद्धादि समय में हाथ जोड़ मांगते हैं कि "माच याचिष्म कंचन" वही भीख मांगना जिनने स्वधर्म समझ अपने सिर पर

रखलिया है वे ब्राह्मण मतलबी!!! आज कालके ब्राह्मणों में जो कुछ अवच्छेदकता प्रकारंता का अभ्यास कर केवल दक्षिणा दक्षिणा पर बकध्यान लगाये बैठे रहते हैं और यों चाहे समस्त भारत नष्ट हो जाय और धर्म का विलोप हो उस पर कुछ न दृष्टि दें पर दक्षिणा मिलनी हो तो पग्गड़ बांध सब के आगे बैठ "राज्ञः पुरुषः" के खर्रे झाड़ने के प्रहसन करने लगते हैं ऐसे कलिकाल के ब्राह्मणों को जो चाहे कहलीजिये हम न बोलेंगे पर यह निश्चय है कि हम लोग जिन आचार्यों की लकीर पर फकीर होरहे हैं वे ऐसे न थे याज्ञवल्क्य प्रभृति महर्षि जो जननिवास छोड वनमें झोपड़ी कर केवल तप और समय समयपर उपदेश करते थे उन्हें क्या पड़ा था कि वे असदुपदेश कर जगत् को वञ्चन करें ? (याज्ञवल्क्यस्मृति गणपति कल्पप्रकरण प्रसिद्ध है जिसमें मूर्त्ति पूजा का विधान है)

(मनु को तो दयानन्द जी क्षण क्षण में प्रमाण मानते हैं देखिये उनने भी अ० ४ श्लो० १५२, १५३में लिखा है कि "मंत्रप्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम् ॥ १५३ ॥

देवतान्याभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्च द्विजोत्तमान्। ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूमेव च पर्वसु ॥ १५३ ॥ यहां" स्पष्ट लिखा है कि पूर्वाह्ण (दोपहरके पहले) में शौचस्नानादि क्रिया करैं और मन्दिरोंमें दर्शन करने जायँ फिर स्वामी, गुरु, महात्माओं को देखैं पर्वों इत्यादि में कहिये मनु को क्या पड़ा था कि इस जोर से उपदेश करैं ?

जो देवर्षि नारद केवल वीणा वादन कर जगत् को सुधा वृष्टि से प्लावित करते फिरते थे उनमें, कब सम्भव है कि वञ्चकता से नारदसूत्र और पञ्चरात्र का उपदेश किया ? महर्षि शाण्डिल्य को क्या पडा था कि भक्तिसूत्र बना जगत् को जाल में डालैं ? हमारा तात्पर्य यह है कि ऐसे ऐसे महात्माओं ने जब मूर्त्ति पूजा का उपदेश किया है, तो इनका कथन अवश्य आप्त वाक्य है, और इस कारण मूर्त्तिपूजा में शब्द प्रमाण भी प्रबल प्रमाण है।

यों मूर्त्तिपूजा में पद्धतिकारों के वचन, आचार्यों के वचन, वेदव्यास के पौराणिकवचन, वाल्मीकि के गङ्गापूजादिद्योतक वचन, स्मृतिकारों के वचन, शाण्डिल्यादि सूत्रकारों के वचन, स्वप्नेश्वरादि भाष्य करों के वचन, दृढ शाब्द प्रमाण हैं।

यद्यपि इतने ही पर्य्याप्त प्रमाण हैं तो भी कितने ही ऐसे असन्तोषी भी संसार में हैं जिन्हें इतने पर भी सन्तोष नहीं होता। प्रियवर, सन्तोष तो श्रद्धा विश्वास से होता है जब श्रद्धा विश्वास नहीं तब वह मताधिकारी नहीं और उस के लिये हमारा उद्योग नहीं यह हम कई बार कह चुके हैं। पर हमारे सनातनधर्मावलम्बी होकर जो सन्दिहान हैं केवल उन्हीं के लिये हमारा उद्योग है उन में से यदि कोई यह समझे कि "वेद में तो कहीं मूर्ति और मन्दिर आदि की चर्चा ही नहीं है और ऊपर ऊपरके प्रमाणोंसे ठोस सन्तोष नहीं होता" तो ऐसों के लिये अब वेद की छान बीन भी की जाती है ॥

सामवेदीय षड्विंश ब्राह्मण षष्ठ प्रपाठक में लिखा है " दैवतायतनानि कम्पन्ते दैवतप्रतिमा हसन्ति" यह उत्पात और शान्तिका प्रकरण है सो उत्पात कहा है कि देवमन्दिर कांप उठैं और देवमूर्तियाँ हँस पडें तो उत्पात है और आगे इसकी शान्ति लिखी है। यों वेद में भी देवमन्दिर और मूर्तियों की चर्चा मिली ॥

ऐसे स्थलों में दयानान्दियों को दो आपत्ति हुआ करती हैं (१) एक तो ब्राह्मण भाग वेद नहीं है

(२) दूसरे इसका कुछ दूसरा ही अर्थ है क्रमशः इसकी भी परीक्षा कर लीजिये ।

(१) वेद के दो भाग हैं एक मन्त्र भाग एक ब्राह्मणभाग । तो भला दयानन्द लोग कहैं तो, किस युक्ति से एक भाग तो वेद है और दूसरा नहीं ! इस विषय में काशी—वासी राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द और दयानन्दसरस्वती जी से लिखित वाद हुआ था जिसमें बराबर राजा साहबकी ओरसे सभ्यता-परिपूर्ण पाण्डिताई से भरे दिव्य लेख जाते थे और स्वामी जी की ओर से बिलकुल बैठकबाजी के गालीभरे युक्ति और पण्डिताई की चर्चा से रहित लेख जाते थे । इस विषय को क्रमशः जिसे पढना हो वह राजा साहब का छपवाया निवेदन नामक ग्रन्थ मंगवा ले । निःसन्देह राजा शिवप्रसाद साहब के आगे दयानन्द जी को अवाक् होना पडा था । और ब्राह्मण-भाग के वेद न मानने से हमारे देशही ही क्या फ्रांस अमेरिका इंग्लेण्ड आदि के निवासी विमतावलम्बी विद्वान् भी इन की डफोल शंख समझते थे राजा साहब ने दूसरे निवेदन के ४ पृष्ठ ६ पं० में लिखा है "फरङ्गिस्तान के विद्वज्जन मण्डलीभूषण, काशिराजस्थापितपाठ-

शालाध्यक्ष (Prinsipal Queen's College, Benares.) डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखाया, बहुत अचरज में आये और कहने लगे कि हम तो स्वामी जी महाराज को बड़ा पण्डित जानते थे पर अब उन के मनुष्य होने में भी सन्देह होता है" राजासाहब ने अपने ग्रन्थ पर टीबो साहब की एक चीट्ठी भी छापी *है जिस में उनने स्पष्ट लिखा है कि दयानन्दजीसे राजासाहबका उत्तर नहीं हो सका ॥

+वह चिट्ठी यह है "The question at issue between Raja Sivaprasad and Dayanand is the authoritativeness of the several parts of what is commonly comprised under the name "Veda." Dayanand Sarassvati rejects the Brahmans and Upanishads (with one exception) and acknowledges the authority of the samhitas only. As this procedure is not in agreement with the religious belief of the Hindus of the present day as well as of past ages of which we have records. Dayanand Sarassvati is bound to produce convincing proofs for the validity of the distinction he makes. He mentions that the Samhitas are "ईश्वरोक्त" while the Brahmans and upnishads are merely "जीवोक्त" but how does he prove this assertion ? (for as it stands it cannot be called any thing but a mere assertion.) The assertion of the Samhitas being स्वतःप्रमाण while the Brahmans and Upanishads

are merely परतःप्रमाण can likewise not be admitted before it is supported by arguments stronger than those which Dayanand Sarassvati has brought forward up to the present. Raja Sivaprasad is right to ask "why should not both be स्वतःप्रमाण if one is so?" or again "why should not both be परतःप्रमाण if one is so ?" and this reasoning could certainly not be employed by any one for proving that other non-vedic books as well are to be considered equal to the Veda; for the Veda alone (including Brahmans and Upanishads) enjoys the privilege of having since immemorial times been acknowledged by Hindus as sacred and revealed books.

With regard to the passage quoted by Dayanand Sarassvati from the Satapatha Brahmana (Brihadaranyak Upanishad) it must be admitted that the objection of Raja Sivaprasad is well founded; if one part of the passage is authoritative, the other part is so likewise. The assertation whether the whole passage is a वाक्य or a वाक्य समूह is wholly irrelevant to the point at issue.

Daynand Sarassvati has certainly no right to declare the passage from Katyayana according to which the Veda consists of Mantra and Brahmana-an interpolation. Acting in this way any body might declare any passage contrary to his preconceived opinions an enterpolation.

Dayanand Sarassvati rejects the authority of the Brahmans. How then does he prepare to deal with Brahmana portions of the Taittiria Samhita, which in character nowise differ from other Brahmans like the Satapatha, Panchavimsa, &c. And on the other hand does he reject all the mantras contained in the Taittiriya Brahmana ?

G. THIBAUT.

कहिये तो जब "मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" यों कात्यायन आश्वलायन आदि महर्षि मुक्तकण्ठ-हो कह रहे हैं "सहस्रवर्त्मा सामवेदः" कह महाभाष्य-कार भगवान् पतञ्जलि बेदका विस्तार दिखलातेहैं। भगवान् मनु अ० २ में "उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्त्तते लोक इतीयं वैदिकी श्रुतिः" इस श्लोक द्वारा ब्राह्मणकी ऋचाको वैदिकी श्रुति कहतेहैं वैसेही गौतम व्यासके सूत्रोंमें तो अनेक ब्राह्मण वाक्य श्रुति कहके व्यवहृत हैं तब केवल दयानन्दजीके कहने से हम लोग उलटा विश्वास कैसे करैं? जिसे यह विषय अच्छी रीतिसे देखना हो सो दयानन्दमतमूलोच्छेद नामक ग्रन्थ बांकीपुर खड्गविलास प्रेससे मँगाकर देखले।

दयानन्दजी भी इस बातको जानते थे, इसी कारण स० प्र० ३ संस्करण पृ० ६०१—धारा २ में लिखा है "मन्त्र-भाग" इससे विदित होताहै कि इन की समझमें भी कोई दूसरा भाग और भी है। फिर स्वयं ब्राह्मणभागकी ऋचाओं को बात बात में लिखतेहैं तो अवश्य उनमें भी ब्राह्मणको वेद माना है पर मूर्त्तिपूजाके विरोध के कारण बहाने करने पड़े।

फिर दयानन्दजीने जैसी वेदकी उत्पत्ति मानी है उससे भी मन्त्र और ब्राह्मणकी समान ही मर्यादा होतीहै ॥ देखिये स० प्र० ७ वां उल्लास उनने यों लिखा है "अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः-सूर्यात् सामवेदः" शत० ।—

प्रथम सृष्टिकी आदिमें परमात्माने अग्नि वायु आदित्य, तथा * आङ्गिरा इन ऋषियोंके आत्मामें एक एक वेद का प्रकाश किया" यह मन्त्र भाग हुआ कि ईश्वरने ऋषियोंके हृदय में प्रादुर्भूत किया । अब ब्राह्मणकी उत्पत्ति सुनिये, उसी प्रकरणमें थोडीही दूर आगे बढ़के दयानन्द जी ही अपने श्रीहस्तसे लिखते–हैं "धर्मात्मा योगीमहर्षि लोग जब जब जिस जिसके अर्थको जाननेकी इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वरके स्वरूपमें समाधिस्थित हुए तब तब परमात्माने अभीष्ट मन्त्रोंके अर्थ जनाये" यह ब्राह्मण भाग हुआ इसे भी ईश्वरहीने ऋषियोंके हृदयमें प्रादुर्भूत किया । अब दयानन्दी लोग देखें तो जब उनके गुरु दोनो ही भागोंको ईश्वर की ओर से बतलातेहैं तो क्या ईश्वर ने ब्राह्मण भाग में कुछ मिथ्या उपदेश

---

* वाहरे अनुवाद ! अंगिराको कहांसे ला ठूँसा ॥

किया अथवा जिन्हें दयानन्दजीने एक मुँहसे धर्मात्मा योगी महर्षि कहा उन्हीको अब अधर्मी कहनेको कोई दूसरा मुँह लावेंगे और कहेंगे कि ईश्वरके उपदेशसे विरुद्ध उनने अपने मनसे जगत्के ठगनेको लिख दिया?

[जयध्वनि]

(२) दयानन्द और दयानन्दियोंकी यह चरम चेष्टा होतीहै कि जब किसी प्रामाणिक वचन पर कोई कला न लगे तो उसका अर्थ उलटा पुलटा करने लगना, पर अर्थ उलट पुलट करने में भी पण्डिताई चाहिये उसका हाल अबोध निवारण नामक पुस्तक में देख लीजिये। इनकी जो कुछ पण्डिताई थी सो धूर्त्तता की थी सो देखिये, इस वाक्य पर भी धूर्त्तताकी आँधी कैसी उड़ाई है । सं० १९४२ में आर्यगजट नामक उर्दू अखबारमें किसी-चालाकने सनातनधर्मावलम्बी पर शोक प्रगट कर लिखा था कि ये लोग कम इल्मीसे इन वाक्योंका अर्थ नहीं जानते। उन लोगोंका अर्थ सुनिये । वह कहतेहैं कि 'यह सार्इन्सकी बात है कि "देवतायतनानि" माने गुब्बारे बेल्यून "कम्पन्ते" जब कांपने लगते हैं "तो दैवतप्रतिमा हसन्ति" विद्वान् लोग हसने लगते

हैं !! उन्हीं दिनों धर्मदिवाकरके पत्रप्रेरकने इन्हें फटकारा था । हम भी आप लोगोंको इसका पूरा प्रकरण दिखलातेहैं आप लोग स्वयं समझेंगे कि यह प्रकरण औरका और है फिर इसमें एक पंक्तिका भी दूसरा अर्थ ठसड़ सक्ता है कि नहीं ।

पहिले खण्डके प्रारम्भहीमें लिखा है "अथातोऽद्भुतानां कर्म्मणां शान्तिं व्याख्यास्यामः" अद्भुत अर्थात् अनिष्टके सूचक जो कर्म हैं, उनकी शान्तिका व्याख्यान करतेहै। इसके अनन्तर आठों इन्द्र आदि देवताओंके कर्मोपयोगी मन्त्र आवेंगे, उनकी प्रतीकमात्र लिख दी है. और सामान्य रीतिसे शांतिकर्मका भी संक्षेप इसमें लिखा है ।

द्वितीय खण्डमें "यह शान्ति-कर्म्म-विद्या" जिस प्रकार ब्रह्मा से देवताओंको प्राप्त हुई इसका वर्णन और शान्तिकर्मके प्रारम्भकी कुछ विधियोंका वर्णन है।

तृतीय खण्डमें इन्द्र देवता सम्बन्धी उत्पात और उस लिये शान्तिकर्मकी विधि लिखी है। यथा।"स प्राचीं दिशमन्वावर्ततेऽथ यदास्य मणिमाणिक–कुम्भ-स्थालीदरण–मायामा राजकुल–विवादो वा यानच्छत्र-शय्यासनावसथध्वजपताकागृहैकदेशप्रभञ्जनेषु. गज-

वाजिमुख्या वा प्रमीयन्त, इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणीन्द्रदैवत्यान्यद्भुतानि प्रपञ्चितानि भवन्तीन्द्रोयन्द्रो मरुत्वत इति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चाभिराज्याहुतिभिरभिजुहोतीत्यादि" फलितार्थ । ऐन्द्र उत्पातोंके निमित्त जब मनुष्य होम करे तो "सप्राचीं-दिश०" वह पूर्व दिशाकी ओर मुंह करले, "अथ यदास्य" जब उसके यह वक्ष्यमाण उत्पात होवें यथा। महामूल्यहार आदिकी मणि अकस्मात्‌ही दरक जायँ वा मणिक कुम्भ, स्थाली आदि पात्र अकस्मात् धरे२ ही फट जायँ, वा अकस्मात् चित्तमें उद्विग्नता उत्पन्न होजावे, वा निर्निमित्तक ही राजकुलसे विवाद हो-जाय; अथवा यान, छत्र, शय्या, सिंहासन, ध्वजा, पताका वा गृह आदि किसी का एक प्रदेश टूट जाय, वा अकस्मात् ही हाथी घोड़े आदि पशु इसके मर जायँ, यह सब अद्भुतकाण्ड (ऐन्द्र) इन्द्रदेवता सम्बन्धी उत्पात कहलातेहैं इनके शमनार्थ ये प्रायश्चित्त है । यथा पहिले "इन्द्रायेन्द्रो मरुत्व" इस मन्त्रद्वारा स्थाली-पाक की आहुति देके पीछे इन मन्त्रों से और पांच घृताहुति देवे। यथा १ इन्द्राय स्वाहा २ शचीपतये० ३ वज्रपाणये ०४ ईश्वराय० ५ सर्वपापशमनाय स्वाहा।

बस इन पांच मन्त्रों से घृत की आहुति देके साम का गान करे इति। यह सब बातें अविकल तृतीय खण्ड में हैं।

४ र्थ में याम्य अर्थात् यम देवता सम्बन्धी उत्पात और उन की शान्ति है। यथा "सदक्षिणां दिशमन्वावर्तते यदास्य प्रजायाम्"

५ म खण्ड में "स प्रतीचीं दिशमन्वावर्ततेऽथ यदास्य धान्येष्वीतयः प्रादुर्भवन्ति" "एतानि वरुणदैवत्यान्यऽद्भुतानि" यह लिखा है इसका अर्थ यह है, जब इसके धान्यादि में ईतियां अर्थात् अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डियां वा मूषक आदि हो जावें, तो ये वारुण्य उत्पात हैं, इस लिये जब शान्ति होम करे तो वरुण की दिशा (प्रतीचीं दिशं) पश्चिम की ओर मुँह कर के करे इत्यादि।

६ ष्ठ खण्डमें। कौबेर उत्पातों का वर्णन है उन के शान्त्यर्थं लिखा है, "स उदीचीं दिशमन्वावर्तते" अर्थात् वैश्रवण सम्बन्धी उत्पातों के निमित्त होमार्थी पुरुष उत्तर की तरफ मुँह करे। इत्यादि।

७ म खण्ड में भूकम्प आदि आग्नेय उत्पातों का वर्णन है और तन्निमित्तक शान्ति लिखी है, प्रारम्भ

में यही पद है, "स पृथिवीमन्वावर्त्तते" अर्थात् आग्नेय उत्पातों में होमार्थी पुरुष पृथ्वी की ओर देखके होम करे।

८ ष्टम खण्डमें और नवमखण्ड में क्रमसे वायवीय और सोमदेव सम्बन्धी उत्पात हैं, उनमें क्रमशः पहिलेमें "सोन्तरिक्षमन्वावर्त्तते" और पिछले में "स दिवमन्वावर्तते" लिखा है। इन का अर्थ यह है कि वायव्य उत्पातों में मुंह अन्तरिक्ष (आकाश) की ओर और सौम्यों में दिव (ऊर्द्ध्वभाग) की ओर कर के होम करे।

दशमखण्ड के प्रारम्भ से ही लिखा है, "स परां दिवमन्वावर्त्तते, यदाऽस्याऽयुक्तानि यानानि प्रवर्त्तन्ते, दैवतायतनानि कम्पन्ते, दैवतप्रतिमा हसन्ति, रुदन्ति स्फुटन्ति स्विद्यन्त्युन्मीलन्ति. निमीलन्ति, प्रतिप्रयान्ति नद्यः, कबन्धमादित्ये दृश्यते, विजले च परिविष्यते, केतुपताकाछत्रवज्रविषाणानि प्रज्वलन्ति, अश्वानाश्च बालधीष्वङ्गाराः क्षरन्ति, अहतानि मर्य्याणि कनिक्रन्दन्ते इत्येवमादीनि तान्येतानि सर्वाणि विष्णुदैवत्याऽद्भुतानि प्रायश्चित्तानि भवन्ति, इदं विष्णुर्विचक्रमे इति स्थालीपाकं हुत्वा पञ्चभिराज्याहुतिभिरभिजुहोति विष्णवे स्वाहा इत्यादि"

इसका तात्पर्य यह है कि "यदास्य०" जब इसके अयुक्तयान अर्थात् स्वप्न के समय गर्दभ और महिष आदि निन्दित असवारियों पर आप दिखायी देवे वा इस के देवमन्दिर कम्पायमान होवें, वा इसके देवताओं की प्रातिमा हंसने रोने नाचने वा खिलने लग जांय वा उनसे पसीना चलने लगे, वा वे आखें खोलें और बन्द करें; और अकस्मात् नादियों का प्रवाह उलटा चल पडे, सूर्य्य के तपते हुए "कबन्ध" बिना शिर के शरीर की छाया दिखायी देवे, वृष्टिकाल के विना ही सूर्य्य और चन्द्र के चारों ओर परिवेष अर्थात् परिधि मण्डल हो जावे, और केतु, पताका छत्र, वज्र विषाण आदि अकस्मात् ही प्रज्वलित होने लग जायँ, घोडों के पूछ से अग्नि की चिनगारियां झड़ २ के गिरने लग जांय, और विना ही ताडना के दुन्दुभि आदि बाजे बजने लग जांय, यह सब उत्पात "वैष्णव" कहलाते हैं, इन के शमनार्थ प्रायश्चित्त ये हैं "इदं विष्णुः" इस मन्त्रद्वारा स्थालीपाक का हवन करके विष्णवे स्वाहा इत्यादि पांच मन्त्रों से पांच आहुती दे और वे पीछे सामवेद के मन्त्रों का गान करे इत्यादि।

वाचक! देवप्रतिमाओं के कम्पन आदि उत्पात अनिष्ट

के समयमें हुआ करते हैं, यह बात म० भार० उद्योग प० में भी लिखी है, "देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः । उन्मीलन्ति निमीलन्ति नृत्यन्ति च हसन्ति च" भारत युद्ध के समय में ये उत्पात होने लगे। यथा "देवतायतनस्थाश्च" कौरवेश्वर के देवस्थानों में जो देवता थे वे सब उन्मीलन आदि व्यापार करने लगे । इति

अब कहिये इस प्रकार से गुब्बारे का अर्थ ठीक होता है अथवा देव मन्दिरका ! [जयध्वनि]

यद्यपि ब्राह्मण भाग सम्बन्धी मूर्त्तिपूजाद्योतक इतना ही वचन बहुत था तो भी "द्विर्बद्धं सुबद्धं" के लिये और भी दिखलाते हैं कि कालाधिष्ठातृदेव की पूजा ईंटोंपर करना लिखाहै ॥

(१) एष वै मृत्युर्य एष संवत्सरः एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति अथ म्रियन्ते, तस्मादेष एव मृत्युः, स यो हैतं मृत्युं, संवत्सरं वेद न हास्यैष पुरा जरसोऽहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति सर्वं हैवायुरेति शत० ब्रा० १० । ३ । ३ एष एवान्तकः एषोऽहमर्त्यानामहोराभ्यामायुषोऽन्तं गच्छति अथ म्रियन्ते, तस्मादेष एवान्तकः स यो हैतमन्तकं मृत्युं, संवत्सरं

वेद न हास्यैष पुरा जरसोऽहोरात्राभ्यामायुषोऽन्तं गच्छति सर्वं हैवायुरेति ॥

(२) स यदग्निं चिनुते । एतमेव तदन्तकं मृत्युं संवत्सरं प्रजापतिमग्निमाप्नोति यं देवा आप्नुवन् ।

(३) तद्याः परिश्रितः रात्रिलोकास्ता रात्रीणामेव साप्तिः क्रियते रात्रीणां प्रतिमा ताः षष्टिश्च त्रीणि शतानि च भवन्ति षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि संवत्सरस्य रात्रयः इत्यादि । शत० ब्रा० १० । ३ । १३ ।

(४) अथ यजुष्मत्यः इत्यारभ्य याः षष्टिश्च त्रीणि च शतान्यऽहर्लोकास्ताः अह्नामेव साप्तिः क्रियतेऽह्नां प्रतिमा ताः षष्टिश्च त्रीणि च शतानि भवन्ति, षष्टिश्च ह वै त्रीणि च शतानि संवत्सरस्याहान्यथ याः षट्त्रिंशत्पुरीषं तासां षट्त्रिंशी ततो याश्चतुर्विंशतिरर्द्धमासलोकास्ताः अर्द्धमासानामेव साप्तिः क्रियते अर्द्धमासानां प्रतिमा, अथवा द्वादशमासलोकास्ता मासानामेव साप्तिः क्रियते मासानां प्रतिमा ता उ द्वे द्वे सहर्तुलोका ऋतूनामशून्यतायै । १९ ।

(५) अथ या लोकम्पृणा मुहूर्त्तलोकास्ता मुहूर्त्तलोकानामेव साप्तिः क्रियते मुहूर्त्तानां प्रतिमा ता दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि भवन्ति, एतावन्तो हि संवत्सरस्य मुहूर्ताः इत्यादि शत० ब्रा० १० प्र० ३ । २२० ।

इसका अर्थ विस्तारभय से नहीं किया जाता है पर बोद्धा लोग देख लें इसीमें स्पष्ट रूप से काल देव का पूजन ईंटों पर है । तिसमें भी पहले तो वर्षको काल स्वरूप माना है फिर उसकी प्रतिमा ईंटोंसे बनाई है ।

जैसे अर्थका प्रतिनिधि शब्द और शब्दका प्रतिनिधि लेख लेके सांसारिक व्यवहार चलता है वैसेही कालपुरुष (मृत्यु) का प्रतिनिधि वर्ष और उसका प्रतिनिधि उसकी प्रतिमास्वरूप ईंट माना है ॥

तिसमें भी ३६० ईंटें वर्षकी ३६० रात्रियोंकी प्रतिमा हैं ३६० ईंटें वर्षके ३६० दिनोंकी प्रतिमा हैं, २४ ईंटें वर्षके २४ पक्षोंकी प्रतिमा हैं, और १२ ईंटें वर्षके १२ मासोंकी प्रतिमा हैं । फिर १०८०० ईंटें वर्ष के (३६०×३०=१०८००) १०८०० मुहूर्त्तोंकी भी प्रतिमास्वरूप हैं ॥

प्रियवर ! ये अर्थ यहां स्पष्ट और प्रकरणसे प्राप्त हैं पर नहीं जानते दयानन्दी लोग इसका अर्थ नीलकी खेती समझते होंगे अथवा होटलका विसकुट गपकना समझते होंगे । (जयध्वनि)

विस्तर तो बहुत हुआ पर और एक प्रकरण सुन लीजिये जिसमें सोने की मूर्ति बनाके सूर्यका पूजन स्पष्ट, वेदमें लिखा है ॥

शतपथ ब्रा० अ० ३ प्र० ४।

"अथ पुष्करपर्णमुपदधाति । योनिर्वै पुष्करपर्णं योनिमेवैतदुपदधाति। आपो वै पुष्करं, तासामियं पर्णं, यथा वा इदं पुष्करपर्णमप्स्वध्याहितमेवमियमप्स्वध्याहिता, सेयं योनिरग्नेरियꣳ ह्यग्निरस्यै हि सर्वोऽग्निश्चीयते, इमामेवैतदुपदधाति, तामनन्तर्हिताꣳ सत्यादुपदधाति, इमां तत्सत्ये प्रतिष्ठापयति, तस्मादियꣳ सत्ये प्रतिष्ठिता, तस्मादियमेव सत्यमियꣳ ह्येवैषां लोकानामद्धातमाम् ८।

अथ रुक्ममुपदधाति। असौ वा आदित्य एष रुक्म एष हीमाः प्रजा अतिरोचते रोचो है तꣳ रुक्म इत्याचक्षते परोक्षं परोक्षकामा हि देवाः। अमुमेवैतदादित्यमुपदधाति, स हिरण्मयो भवति परिमण्डल एकविंशतिनिर्बाधस्तस्योक्तो बन्धुरधस्तान्निर्बाधमुपदधाति, रश्मयो वा एतस्य निर्बाधा अधस्तादुवा एतस्य रश्मयः १०।

"तं पुष्करपर्ण उपदधाति। योनिर्वै पुष्करपर्णं योनावेवैनमेतत् प्रतिष्ठापयति ११ यद्धेव पुष्करपर्ण उपदधाति। प्रतिष्ठा, वै पुष्करपर्णमियं वै पुष्करपर्णमयमु वै प्रतिष्ठा, यो वा, अस्यामप्रतिष्ठितोऽपि दूरे मन्न प्रतिष्ठित एव सः, रश्मिभिर्वाऽएषोऽस्याः प्रतिष्ठितोऽस्यामेवैनमेतत् प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठापयात १२।

"अथ पुरुषमुपदधाति। स प्रजापतिः सोऽग्निः स यजमानः। हिरण्मयो भवाति ज्योतिर्वै हिरण्यं, ज्योतिरग्निः अमृतꣳ हिरण्यम् अमृतमाग्निः पुरुषो भवति पुरुषो हि प्रजापतिः ॥ ५ ॥

"तꣳ रुक्म उपदधाति । असौ वा आदित्य एष रुक्मो य एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः स एष तमेवैतदुपदधाति" १७।

"अथ सामगायाति। एवद्वै देवा एतं पुरुषमुपधाय तमेतादृशमेवाऽपश्यन् यथैतच्छुष्कं फलकम् २४ तेऽब्रुवन् उपतज्जानीत यथाऽस्मिन् पुरुषे वीर्य्यं दधाम इति तेऽब्रुवंश्चेतयध्वमिति, चितिमिच्छतेति वाव तद् अब्रुवन्, वीर्य्यमादधुः तथैवाऽस्मिन्नयमेतद् दधाति" इत्यादि ।

"अथ सर्पनामैरुपातिष्ठते। इमे वै लोकाः सर्पाः, ते ह अनेन सर्वेण सर्पन्ति, यदिदं किञ्च" इत्यादि ।

क्रमशः अर्थ विस्तृत होगा। तात्पर्य स्पष्ट है कि पृथ्वी की प्रतिमास्वरूप कमल के पत्ते का स्थापन करे उस पर सोने के गोलेको सूर्य–प्रातिमा का स्थापन करे इस प्रतिमामें सुवर्णकी किरण भी बनवाये रहे । उस पर एक पुरुषाकार मूर्त्तिका स्थापन करे, इसे

सूर्यमण्डलमध्यवर्त्ती महापुरुषकी मूर्त्ति समझे। फिर सामगान करके उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करे और फिर "नमोऽस्तु सर्पेभ्यः" इत्यादि से स्तुति करे॥

कहिये सहृदयगण क्या अब भी मूर्त्तिपूजा के वैदिक होने में कोई सन्देह रह गया है? ऐसेही यदि खोजे जायँ तो वेद में मूर्त्तिपूजाके सैकड़ों ही इशारे पाये जाते हैं जिनसे मूर्त्तिपूजा में वेद की भी सम्मति जानी जाती है। बस लीजिये आठवें प्रश्न-का भी उत्तर पूरा हुआ॥ (जयध्वनि)

महाशयगण! मेरे कथन में कहीं भूल चूक हुई हो अथवा कोई अंश कर्रा होगया हो अथवा यद्यपि मेरी इच्छा न थी न है तो भी यदि कहीं किसी पर आक्षेप झलक गया हो तो आप लोग क्षमा करें। और प्रेम-से उमंग के कहें कि श्रीवृन्दावनविहारी की जय। (जयध्वनि) प्यारे हम लोगों का यह वय हो गया और थोड़ेही दिनों में खटाखट बाकी के दिन भी क्षण ऐसे बीत जायँगे कोरी दांत खटाखट में क्या क्या धरा है मौत गरज रही है। प्यारे, आओ खडे होके उसी पतितपावन, दीनदयालु का नाम ले उसी के आगे पल्ला पसारें। प्रियवर प्यासा आदमी जिस

जल की प्यास से तड़फड़ाता चारों ओर भागता गिरता पड़ता मृगतृष्णा की गरम बालू में पड़ के भुंजता है उस जल को कुछ भी दया होती तो वह उसी क्षण वहीं अपने प्यासे खोजी के लिये प्रगट होता, पर वह तो जड है ज्ञानशक्ति से भी रहित है। परन्तु प्यारे हम लोग जिस परमात्मा की प्राप्तिकी प्याससे व्याकुल हैं, जिस के पाने के लिये हमारे भारतवासी सहस्रों आचार्य सहस्रों भाँति नर्त्तन करचुके हैं, उस जगदीश्वर को हमलोगों ने दीनदयाल, दयासागर, और पतितपावन सुना है। प्यारे अब न चूको उसी को पुकारो उसी को याद करो देखो तो उसका नाम ही कैसा मीठा है, उसके नामही कहने से कैसी शान्ति होती है, और उसका नाम ही कैसे अमृत के से तलाव में स्नान करा देता है, मैंने भी बहुत कहा अब समाप्त करताहूँ एक बार बोलो तो [हरिनाम के साथ विविध जयध्वनि] इति



उपसंहार।

उपसंहारमें हमें इतना ही कहना है कि हमारे धार्मिक रसिकों को यह ज्ञातही है कि भाषणमें जो रस और सामर्थ्य है वह ज्यों का त्यों लेखमें नहीं आसकता अतः व्यासजीकी वक्तृताओंके समय जैसा सन्नाटा होजाता था कि कहीं किसी चिडिया की भी चकचकाहट न सुन पड़े और सुनने वालों को रोमाञ्च पुलक एकाग्रता और परवशता की अवधि और उसी कारणसे टपाटप सन्देहोंका निराश होजाय यदि वह वैसा का वैसा इन लेखों से न झलके तो क्षमा करें। और अभी तक हमारे देशमें सत्वर लेखकी प्रणाली ऐसी नहीं निकली है कि एक ओर वक्तृता होती जाय और एक ओर अविकल ज्यों की त्यों लिखी जाय इस कारण वक्ताके सब अक्षर ज्योंके त्यों लिखके दिखलाना असंभव है। तब यही है कि इस वक्तृतामें भी समय पर केवल विषय और प्रधान बात ही भर लिखली गई हैं और पीछे वक्ताके पूरे साहाय्यसे वक्तृता लिखके प्रकाशित की गई है और इन्ही कारणोंसे कई बातोंका कुछ घटना बढ़ना भी सम्भव

है इस कारण व्यासजीकी वक्तृताओंके श्रोताओं की दृष्टिमें यदि कोई बात रह गई हो अथवा बढ़ गई हो तो क्षमा करें ॥

हमको इस महाकार्य करनेका कभी साहस न होता यदि छपराकी धर्मसभा हमें प्रोत्साहित कर साहाय्य न देती इस कारण हम उस सभाके कार्यसम्पादक परमधार्मिक बाबू दुर्गाप्रसाद एम्. ए. बी. एल् को तथा सभाके मेम्बरों को हृदयसे धन्यवाद देते हैं और आशा है कि और धर्मसभाओंसे भी इस पुस्तक को ग्रहण कर हमें न्यूनातिरेक दोष सूचित किये जांयगे। हमारे आर्यसमाजी और ब्रह्मसमाजी मित्रों से और भी विशेष प्रार्थना है कि वे एक बेर इसे पढैं और गुण दोषोंसे हमें सूचित करें जिसमें हम पुनः संस्करणमें और सुधारें। अब हम आर्य समाजियोंके छोटे २ कई एक उपप्रश्न और उनके उत्तर तथा एक दो इतिहास, लिखते हैं जो कभी कभी किसी किसी वक्तृतामें व्यासजीके मुखसे सुने थे और जिनसे और भी वक्ताओं को हर्ष होगा और काशी वासी बाबू प्रमदादास मित्र महोदयकी वक्तृता पर विलायतके एक

पत्रकी सम्मति भी इसीके साथ प्रकाशित करते हैं जिससे आप लोगोंको विदित होगा कि विलायतियों की समझमें भी सब कोई मूर्तिपूजक अर्थात् प्रतिनिधि पूजक हैं। इति॥

विनत

साहित्याचार्य, धर्माचार्य इत्यादि पदयुक्त

उक्त व्यास जी का शिष्य

गणपतित्रिपाठी:

इतिहास।

इतिहास पुराणके जानने वालोंमें यह दृष्टान्त प्रसिद्ध है कि एकलव्य नामक कोई भिल्ल किसी समय धनुर्विद्या सीखनेके लिये द्रोणाचार्यके समीप गया और प्रणाम कर बोला कि प्रभो! मैं धनुर्विद्या सीखने आया हूं सो कृपा कर सिखलाइये। द्रोणाचार्यने कहा कि तुम जङ्गली भील हो तुमारे लिये इतना ही तीर चलाना आवश्यक है कि कोई बाघ भालू मिले तो मारलो। तुम इतना जानते ही हो फिर इसकी और गहरी विद्या सीखके क्या करोगे ? यह विद्या क्षत्रियोंके लिये है जो धनुर्बाणसे प्रजाका पालन करते हैं। कितना ही भील-

ने कहा पर द्रोणाचार्यने स्वीकार न किया और अर्जुनादिकी भी यही सम्मति हुई तब विचारा भील अपनासा मुंहले चला आया ।

पर उस भीलको धनुर्विद्या सीखने की ऐसी चाट लगी थी कि उससे फिर भी न रहा गया और यह भी उसके जी में जमा था कि विना गुरु कोई काम ठीक नहीं होता है । तब उसने मट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाई और उसी को प्रणाम कर उसके आगे धनुर्बाण रख आप ही आप निशाना लगाना सीखने लगा । जब भूले तब आपही अपने कान ऐंठने लगै और फिर द्रोणाचार्य को प्रणाम कर अभ्यास करै । यों करते करते कुछ दिनोंमें उसे एक प्रकारकी अच्छी बाणविद्या आ गई ।

एक दिन अर्जुन वनमें टहल रहे थे इतनेमें देखा कि एक जन्तु भागा जाता है और उसके मुंहमें बाणों का लच्छा भरा है जिससे वह बोल नहीं सकता। अर्जुनको आश्चर्य हुआ कि इस रीतिसे किसने बाण मारे कि यह मरा भी नहीं और बोलना बन्द हो गया।

अर्जुन यों सोचता विचारता उसी ओर खोजने

लगा तब तक देखा कि एक भील धनुर्बाण लिये टहल रहा है।

अर्जुनने पूछा कि "क्या इस पशुके मुहमें तुमने तीर मारे हैं?" वह बोला "हां, वह बड़ा कोलाहल करता था तब हमने तीरसे उसका मुंह बन्द कर दिया" अर्जुनने कहा " वाह तुमने अपूर्व और दुर्घट काम किया"। उसने कहा "गुरु की कृपासे कोई काम दुर्घट नहीं रहता" अर्जुनने पूछा "तुम किसके शिष्य हो"? वह बोला "द्रोणाचार्य का शिष्य हूं"। यह सुन अर्जनको बड़ा क्रोध हुआ कि द्रोणाचार्यने इस भील को वह विद्या सिखलाई जो हमको भी न सिखलाई।

अर्जुनने चट द्रोणाचार्यके समीप जा आक्षेप पूर्वक कहा कि "क्या आपने चोर और लुटेरुओंको भी धनुर्विद्या सिखलाना आरंभ किया? और उनको वे हथकण्डे सिखला रखे हैं जिनका हम लोगों को नाम भी नहीं कहा "

सुनते ही द्रोणाचार्य चौंक उठे और बोले कि "सर्वथा मिथ्या है ! तुमीरे ऐसे क्षत्रियकुलभूषणोंके रहते हमें क्या पड़ी है कि भीलों को शिष्य बनावें"?

अर्जुनने कहा "हमारे साथ चलिये और मुकाबिला कीजिये यों अर्जुन द्रोणाचार्यको साथ ले जङ्गलमें उसी भीलके पास पहुंचे । भीलने देखतेही द्रोणाचार्य को गुरु गुरु कहके प्रणाम किया । द्रोणाचार्यका क्रोध और भी दूना हुआ और उनने भीलसे पूछा कि " कह मूर्ख मैंने तुझे कब बाणविद्या सिखलाई" भील प्रणाम कर बोला कि "प्रभो इस मूर्तिसे तो आपने नहीं सिखलाई पर दूसरी मूर्ति से सिखलाई है इधर आइये तो दिखलादूं" ॥

तब अर्जुन और द्रोणाचार्यने आगे बढ़के देखा कि उसने एक मट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्ति बना रखी है और उसीके आगे धनुर्बाण रख छोड़े हैं। तब द्रोणाचार्य का क्रोध उतरा और दोनों द्रोणार्जुन बहुत चकित हुए ।

(देखिये द्रोणाचार्यको विदित भी न था पर उनकी मूर्तिके विश्वास-पूर्वक आराधनका कैसा फल हुआ)

इसे न पढ़ा तो कुछ नहीं किया

किसी बादशाहने वज़ीरसे कहा कि "आप हिन्दू लोग जानतें हैं कि वह अल्ला ताला मिट्टी पत्थरों का

नहीं है फिर भी उसके नामसे आप लोग इन दुनयवी चीजों को पूजते हैं तो वह खुश होगा या नाराज?" वजीरने कहा जहां पनाह छः महीने की मोहलत मिले तो मैं इसका जवाब सोचूं बादशाहने मंजूर किया।

उसी बादशाहकी राजधानीमें एक वेश्या आई और जिस पथमें रोज सांझको बादशाहकी सवारी निकलती थी ठीक उसी सडक पर एक कमरे में अपना जमावडा जमाया और एक बादशाह साहब की बडी तसबीर बना के ऊंची चौकी पर रखदी और उसी के सामने हाथ जोड़ बैठने लगी (कौन जाने वजीर साहब का भी इसमें कुछ इशारा हो) बादशाह की सवारी जभी उस राह से निकले तभी उनकी आंखें उस पर पड़ती थीं और उन्हें कौतुक सा होता था कि "मेरी तसबीर पर यह क्यों कुर्बान होती है"। दर्याफ्त करने से बादशाह को मालूम हुआ कि वह कभी उसी तसबीर के सामने फूलों के गुच्छे रखती है कभी इत्रदान पानदान रखती है और कभी उसी तसबीर को माला पहनाती और कभी उसीकी मिन्नत कर हाथ बांध उसी के सामने खड़ी होती है। यह सुन

बादशाह साहब और भी उधर झुके और जभी उस ओर जाते तभी उस ओर देखते और गाड़ी धीमी करलेते, दूसरी ओर जाना होतो भी फेरसे भी उसी ओर आपड़ते और उसे उसी तरह हाथ जोड़े देख और भी खुशहोने लगे ।

आखिर एक रोज बादशाह से न रहा गया और चुप चाप घोड़े पर चढ़ दौड़े और उस के कमरे में जा उस से पूछा कि "तू हर वक्त मेरी तसबीर के आगे सिजदा किया करती है इस से तेरी क्या मनशा है?" उसने सिरझुका पैर चूम कहा कि "जहां पनाह, न तो मुझे ऐसा कोई इलम है और न ऐसी बुलन्द किस्मत ही की उमैद रखती हूं कि कभी हुजूर की कदम्बोसी करसकूं । तब क्या करूं हजूर की तस्बीर ही के आगे अपने दिल की गुम्मार निकालती हूं" यह सुन उस की विचित्र प्रीति देख बादशाह साहब के आखों में आसूं आगये और उनने कहा कि "मैं तेरे इस अजीब वो गरीब इश्क से खुश हुआ अब मेरे साथ चल" ।

बादशाह साहब उसे पालकी पर चढवा लेगये और बेगमों में दाखिल किया और खुद बखुद

वजीर से कहने लगे कि "अब मूर्त्तिपूजा पर जवाब दरकार नहीं" ।

"सांचे मन के मीता"

जैसे प्रश्न वैसे उत्तर

"जेमनि कूकूर तेमनि मूंगूर" [बगाली]

प्र० । क्या साहब आप बड़ी मूर्त्तिपूजा लिये फिरते हैं! कहिये तो मूर्त्ति से आप स्तव और प्रार्थना करते हैं सो क्या वह सुनती है ?

उ० । वाहवा । अच्छा पूछा! ! आप तो गर्भिणी के पेट पर हाथ रख दो महीने के गर्भ से भी गुफ्तगू करें जनमते ही बालक के कान में मुंह लगा के कानाफुसफुस करें, नामकरण में छ महीने के बच्चे से वाग्विलास करें, मुण्डन के समय छुरे से गप्पैं उड़ावें और हमें मना करते हैं? हमारे तो परमात्मा सुनते हैं और उनी का हम स्तव करते हैं । (यह छुरे वगैरह का प्रकरण जिसे देखना हो वह दयानन्दजी की बनाई संस्कार पद्धति देखले)

प्र०। आप जिन मन्त्रों से फल चन्दन आदि चढ़ाते हैं उन मन्त्रों का तो वह अर्थ नहीं है कि चन्दन चढ़ाना और फूल चढ़ाना !

उ०। जी हां ! हमारे यहां तो परमात्मा का गुणकथन करते जाना और पूजा करते जाना जाइज़ है, यहां तक कि "नमः शिवाय" "हरये नमः" आदि नाम मात्र से भी पूजन करते हैं पर आप तो यह सिद्धान्त लिये बैठे हैं कि जो कर्म किया जाय उस समय जो मन्त्र पढ़ा जाय उस का भी वही अर्थ होना चाहिये। तब आप पहले अपने मत के तो कानों की खबर लीजिये। देखिये दयानन्द-मस्करी पुंसवन प्रकरण में लिख गये हैं कि पति अपनी गर्भिणी स्त्री के गर्भाशय पर हाथ धर के पढ़े। जरा चश्मा लगाके देखिये तो उस मन्त्र का क्या यह अर्थ है कि तीन महीने के गर्भ से चुहुल करना और हाथ से टलोल सम्हालते रहना वाहरे दयानन्दियो ! भला तुम आचमन का अर्थ तो कफ हटाना बताते हो पर गर्भ

टटोलने से क्या अर्थ लगाओगे? हां यह कह सकते हो कि यह रोकड़ सम्हालना है।

प्र०। आप चरणामृत को सर्वव्याधिविनाशन कहते हैं तो चरणामृत ही से सब रोग क्यों नहीं मिटाया करते?।

उ०। अजी हम तो चरणामृत से व्याधिविनाशन कहते हैं पर क्या आप गायत्री से रक्षा करना नहीं कहते? आप की समझ में तो सभी कोई गायत्री के अधिकारी हैं फिर डाक्टरों को गायत्री सिखा दीजिये वे रोगियों की इसी से रक्षा करेंगे। और बस सदावर्त खोल न दीजिये जहाजी लोग इसी से जहाज की रक्षा करें पल्टनियां लोग शरीर की रक्षा करें और राजा अपने राज्य की रक्षा करें। मकान गिरने लगै तो मरम्मत न कराइये खपरे चुवें तो खपरे न छवाइये बस गायत्री लेके पहुंचिये॥

प्र०। उस परमात्मा जगदीश्वर की मूर्त्ति बनाना तो उस का अनादर करना है॥

उ०। *जब तक अनादर के तात्पर्य्य से न किया-जाय तब तक कोई काम भी अनादर करना नहीं कहला सक्ता। नहीं तो लोक ही में कितने काम मुकदमें चलाने लायक हो जांयगे। कहिये तो आपके मनमानेही नियमानुसार आदर अना-दर हो तब तो आपकी समझ में अवश्य ही भारत-चक्रवर्तिनीमहारानी बिक्टोरियाकी तस्वीर बनाना और वह भी केवल सिरमात्र बनाना उसका भी पैसे पैसे टके टके में टिकटों पर बिकना और उस

---

* बाबू प्रमदादास मित्र महाशयकी वक्तृतासा में यों है

"If at the sight of a portrait of a beloved and venerated friend, no longer existing in this world, our heart is filled with sentiments of love and reverence, if we fancy him present in the picture still looking upon us with his wonted tenderness and affection and them indulge our feelings of love and gratitude, should we be charged with offering the grossest insult to him that of fancying him to be no other than a piece of painted paper ? Was Cowper all the while insulting and abusing his departed mother, when holding communion with his dear parent visible to his fancy's eye in her picture, he was penning the tenderest of his verses ?

, पर डाक घरों में स्याही तेलके भयानक ठप्प धमाधम बैठाना, बड़ा ही अनादर का काम हुआ। आप लोग तो कदाचित् भी टिकट न लेते होंगे। और आप लोग अपने महामान्य गुरु दादा-गुरु दादे पडदादे की भी तस्वीर न बनाते होंगे।

प्र०। पूजाही करनी है तो लावेण्डर वगैरह चढ़ा क्यों नहीं सुगन्धित करते उस पुरानी धूप वगैरह की भद्दी चाल पर क्यों पचते हैं?

"O that those lips had language ! Life has pass'd
With me but roughly since I heard thee last.
Those lips are thine--thy own sweet smile I see,
The same, that oft in childhood solac'd me;
Voice only fails, else, how distinct thy say,
"Grieve not my child, chase all they fears away!"
The meek intelligence of those elear eyes
(Blest be the art that can immortalize.
The art that baffles Time's gigantic claim
To quench it) here shines on me still the same.
Faithful remembrancer of one so dear.
O welcome guest, though unexpected here !
And while that face renews my filial grief,
Fancy shall weave a charm for my relief,
Shall steep me in Elysian reverie,
A momentary dream that thou art she." & & &

उ०। हम तो बाबा खुले मैदान पुरानी लकीरके फकीर हैं, पर तुम तो ईसाई, मूसाई, केशवी का अर्क-मुरक्कब पी दयानन्दी मजहब का भण्डापकड़े हो। तुम क्यों सीमन्तोन्नयन प्रकरण में गुल्लर, अर्जुन वृक्षकी शलाका, कुशा, और साही के कांटे से स्त्रीके बाल झड़वाते हो, तुम तो नई रोशनी के हो तुमारे लिये क्या हड्डियों की कंघियोंका काल पड गया है ? आप सूअरके बालकी कूंची बनवा लिया कीजिये॥

प्र०। अच्छा मूर्त्तिपूजा ही करते हो तो उसमें स्थापन आदि का मुहूर्त क्या ? और रोहिणी श्रवण आदि के भेद का बखेडा क्या? आकाश के तारों से क्या सम्बन्ध ?

उ०। अहा ! बिचारे नये अङ्गरेजी के विद्वान् तो चट लट्टू होजाँयगे कि क्या अच्छी बात कही ! पर आप के भीतरी पेच के हाल वे क्या जानें कि आप भी पाखण्डी पोप हैं। आप सीमन्तोन्नयन प्रकरण में क्यों लिखते हैं कि "पुंसा नक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात्"। अर्थात् चन्द्रमा ऐसे

नक्षत्र पर होना चाहिये जिस का नाम पुंलिङ्ग हो । क्या शब्दों का लिङ्ग भी काम में लाते हैं ?

प्र० । शूद्र और स्त्रियोंको शालग्राम क्यों नहीं छूने देते ?

उ० । आप भी अपनी संस्कार विधि [३ यसंस्करण] पृ० २२ तो देखिये होम के वास्ते शूद्र की आग में क्यों छूत मानते हैं ? ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही की आग को ग्राह्य क्यों करते हैं ?

प्र० । संस्कृत में मन्त्र बोल बोल पूजा करते हैं सो क्या मूर्त्तियां संस्कृत ही समझती हैं भाषा नहीं ?

उ० । हमारी पूज्य मूर्त्तियां तो सब कुछ समझती हैं, कितने ही मन्दिरों में भजन से पूजा होती है, पर आप आचमन के पानी से संस्कृत झाडते हैं वह आप का कब का सपाठी है ? संस्कारवि० ३य संस्क० पृ० २१ "अमृतोपस्तरणमसि" इत्यादि । जैसे सूबा रामनारायणसिंह के नाती ने फारसी में "बेआयन्द ऐ किब्ल मन दो जहां । के दर्य्या बदस्तस्त राहत रसां" ॥ तर्प्पण बनाया, वैसे आप लोग भी अंगरेजी फारसी में मन्त्रों के तर्जुमे पढ़ा पढ़ाया कीजिये क्योंकि आप तो मन्त्रशक्तिके पाबन्द हैं हीं नहीं ।

प्र०। सत्यदेवको पूजा में सवाया ही नैवेद्य क्यों ?

उ०। आप का अंगोछा २४ ही अङ्गल का क्यों? संस्कार वि० ३य स्कंकरण० पृ० २० देखिये ॥

प्र०। मूर्त्तिपूजकों को एकादशी आदि दिनों में इतर विशेष लगा रहता है यह क्या ? दिन दिन सब बराबर।

उ०। आप स्त्रीसम्भोग के लिये पूर्णा अमा वारण करते हैं सो क्या? उस समय दिनदिन सब बराबर नहीं याद पड़ते ? (संस्कार वि० ३ य संस्क० पृ० ३३ इस प्रकरण में दिनों का बहुत इतर विशेष है)

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गोस्वामी श्री जीवनलालजी महाराज पोरबन्दर

तथा

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस--बम्बई.

London Saturday Review:-February 1st 1868.

"The truth is that, if we were to adhere strictly to the signification of the term idol, we should have to admit that in one way all mankind are more or less idolators. It is impossible for the finite mind to conceive of Deity except under forms of thought borrowed from our own experience Sacred art, from the very earliest times, has been in the habit of depicting Divinity upon a strictly human type. The greatest painters, when they attempt to draw any of the Trinity, do so by borrowing mortal lineaments and shapes and no body blames them severely for this degradation of an intangible idea. Christianity, in one sense, may be said to have encouraged the tendency. It is the cardinal article of faith of the Christian religion that Deity did once become incarenate among men, and we are taught from childhood to conceive of the human and the divine as blended. The language in which our sacred writings speak to us is tinted throughout with what may without irreverence be called authropomorphism. A great philosopher once said that every prayer man breathed may, under one aspect, be deemed an act of unconscious idolatry, because it is coloured with some human idea of personality and character in the Being whom we address. It is true that the metaphysical subtlety of the writers of the English Articles enable them to forbid us to hold that the Deity has parts or passions like ourselves, but all the language

of our religious books is a departure from this impossible advice and uses the materials of common experience and earthly emotion when it wishes to state any thing about the action or the will of God. As every term we employ is taken from material imagery, and every notion we can form is but an image in spite all our efforts, we are all in a certain sense idolators. It is only a question of degree. The savage forms more debased conceptions of the object of his adoration than the civilized European; but if all ideas on the subject are gross and earthly, *idolatry is the law of all human nature and we cannot escape from it.* The Second Commandment is, therefore, for all of us, rather a practical warning against the worst excesses of the imagination than a doctrinal denunciation of material notions *which are a necessity of all thought.* All that it can hope to do is to discourage the extreme follies to which the human mind is prone."

